लोकमान्य

(नाटक)

लेखक
रामबालक शास्त्री

लोकमान्य

(नाटक)

लेखक—

रामबालक शास्त्री

प्रकाशक—

साहित्य मन्दिर,

रामापुरा, नई बस्ती, वाराणसी।

संवत् २०१४ वि०]   [मूल्य २)

प्रकाशक—
साहित्य मन्दिर,
रामापुरा, नई बस्ती,
वाराणसी।

मुद्रक —
आर. एस. धवन,
कमर्शियल प्रिंटिंग वर्क्स,
फोन नं० ७०१, गायघाट, वाराणसी।

दो शब्द

वर्तमान हिन्दी साहित्य में तिरोहित तथा तिरस्कृत सनातन पक्ष के प्रतिष्ठान के उद्देश्य से गतवर्ष की श्रावणी के पावनपर्व पर स्वान्तः-सुखाय मैंने ५ नाटक हिन्दी में लिखने का सङ्कल्प किया था, जिनमें ईश्वर की दया से 'महामना' के साथ 'लोकमान्य' का मुद्रित रूप प्रस्तुत करते हुए मुझे हर्ष हो रहा है और यन्त्रस्थ 'शङ्कराचार्य' तथा 'अन्तःस्थ' "चाणक्य' भी शीघ्र ही मेरे सङ्कल्प के साधक होंगे। इसी प्रवाह में इसी प्रकार मनोनिबद्ध 'समस्या' यदि प्रकाशित कर सका, तो इसमें सन्देह नहीं कि चिरदलित एवं निरन्तर उपेक्षित भारतीय संस्कृति तथा १८८५ से लेकर आजतक की हमारी समस्याओं का स्वरूप हृदयङ्गम कराने में ये रचनाएँ यदि तनिक भी सहायक सिद्ध हुईं तो उनका सौष्ठवश्रेय युग निर्माता-हमारे नाटक-नायकों के यशः शरीर को ही होगा, जिनकी लोकोत्तर निष्ठा में अनुरक्त संस्कृत लेखनी हमारे हृद्गतअत् भावों को अबाधगति से जैसी अनुस्यूत करती लिखती गयी है।

हां, इन नाटकों में उस पक्ष का सतर्क प्रतिपादन उनके पात्रों की प्रकृति के सर्वथा अनुकूल सन्तुलन वृत्ति एवं निरपेक्ष दृष्टि से किया गया है। जिससे सहृदय दर्शक ही सरलता देख सकेंगे या नीरक्षीर विवेकी समीक्षक। इस प्रसङ्ग में साहित्य मीमांसक एवं चाक्षुषयज्ञ के विधिज्ञ डा० भगवत शरण उपाध्याय को कैसे भूल सकता हूँ, जिन्होंने अपने 'विश्व-

साहित्य की रूप रेखा' की रचना में निरंतर व्यस्त रहने पर भी इन रचनाओं की पाण्डुलिपि का सिंहावलोकन करने की उदारता दिखायी है। साथ ही अपने उन शिष्यों को भी शुभाशीर्वाद दिए बिना नहीं रह सकता, जिनके योग से मुद्रण योग्य पाण्डुलिपि के प्रपञ्च से निश्चिन्त रहा। अन्त में अपने रचनागत प्रातः स्मरणीय चरणों का पुनः-पुनः स्मरण करता और कामना करता हूँ कि वे अपने सूक्ष्म शरीर से वर्तमान स्वतन्त्र भारत को वस्तुतः भा-रत बनाकर अपना स्वप्न साकार देखें—

रामबालक शास्त्री

लोकमान्य

पात्र-सज्जा विवरण

प्रथम अङ्क

: श्री :

पुण्या धरणी, जय जय जय ।
भारत-जननी, जय जय जय ।
मोदकरी त्वं पापघ्नी त्वम् ।
सौख्यकारिणी जय जय जय ।
भारत जननी, जय जय जय ।
त्वं विमला, त्वं कमला,
सुफला, सुजला, जय जय जय ।
भारत जननी, जय जय जय ।
सरला सुखदा, जय जय जय ।
भारत जननी, जय यय जय ।
अनुपमधीरा अद्भुतवीरा
शस्त्र-शालिनी, जय जय जय ।
भारत जननी, जय जय जय ।
अघशमनी त्वं, जय जय जय ।
अरिबल-दलनी, जय जय जय ।
भारत जननी, जय जय जज ।।

(१) स्थान—पूना, पोस्ट आफिस ।

बाल—कुर्ता, धोती, मराठी जूता ।

दो गोरे सर्जन—खाकी वेश (पुलिस) ।

सप्रे—धोती, कुर्त्ता, जूता दुपट्टा ।

पाञ्जपे—धोती, कुर्त्ता जूता, दुपट्टा ।

आगरकर—धोती, कोट, काली टोपी किस्ती नुमा ।

महीधर—धोती, कोट, दुपट्टा मराठी पगड़ी जूता ।

बर्वे— " " " " "

छत्रे— " " " " "

डावरे—धोती, कुर्त्ता, जूता दुपट्टा ।

जोशी—धोती, कुर्त्ता, दुपट्टा मराठी पगड़ी ।

द्वितीय अङ्क

(१) स्थान—व्यायाम शाला ।

आगरकर—धोती, कोट, काली किस्तीनुमा टोपी ।

धारोकर—धोती, कोट, मराठी पगड़ी, दुपट्टा ।

डावरे—धोती कुर्त्ता दुपट्टा ।

रानाडे—धोती, कोट, मराठी पगड़ी, दुपट्टा ।

शैलपुरकर—धोती, कुर्त्ता, दुपट्टा ।

न्यायाधीश—जज के वेश में

वकील, कारन्दीकर, वाष्टिष्टा वकील वेश में ।

प्रथम अङ्क

(१) स्थान—पूना पोस्ट आफिस की छड़दार खिड़कियों पर भीतर क्लर्क, बाहर टिकट, लिफाफा लेने वालों, रजिष्ट्री मनीआर्डर करने वालों की भीड़ में दो गोरे सर्जेण्टों का धक्का देने की मुद्रा में प्रवेश और उसे रोकने की अवस्था में बाल का भिड़ जाना, सप्रे के साथ बातचीत, पराञ्जपे, आगरकर, महीधर पन्त, बर्वे, प्रो० छत्रे ।

(२) अध्ययन कक्षा में, बाल, धारोकर, सप्रे, आगरकर, डावरे जोशी गार्गे शास्त्री ।

द्वितीय अङ्क

(१) स्थान—पूना, व्यायाम शाला ।

डावरे, आगरकर, बाल, सप्रे, रानाडे, २ ग्रामीण, बभ्रे शास्त्री, वैजापुर का, धारोकर, प्रो० छत्रे ।

तृतीय अङ्क

स्थान—पूना, केसरी कार्यालय ।

तिलक, सप्रे, बर्वे, डावरे, खप्पर्डे, पराञ्जपे, विपिनचन्द्र

(२) सूरत—कांग्रेस महाधिवेशन मण्डप ।

अरविन्द घोष ।

(३) बम्बई—कारागृह, निरीक्षक, लोकमान्य, न्यायाधीश, ३ शासन वकील, ४ तिलक, वकील ।

(४) दिल्ली—राजभवन ।

(५) केसरी कार्यालय ।

सप्रे

आगरकर

डावरे

लोकमान्य

केलकर

(६) दिल्ली राजभवन ।

१. राय साहब

२. खां साहब

३. सर सिंह

४. वायसराय

५. लोकमान्य

(७) नागपुर—कांग्रेस महाधिवेशन ।

सप्रे

डावरे

गांधी जी

लोकमान्य

—:०:—

॥ श्री ॥

लोकमान्य

प्रथम अङ्क

स्थान—(पूना का प्रधान पोस्ट आफिस। भीतर छड़दार खिड़कियों के भीतर सामने क्लर्क अपने-अपने कार्य में संलग्न। बाहर कोई किसी खिड़की पर मॉनीआर्डर के लिए. कोई रजिस्ट्री के लिए खड़ा है और दो गोरे सार्जेण्ट आगे के खड़े लोगों को ढकेलकर टिकट लेने की मुद्रा में। इतने में दूसरी खिड़की पर खड़ा युवक उसे रोकने की मुद्रा में एक गोरे से डाँटकर कहता है।)

बाल—भला धक्का देकर तू आगे क्यों जाना चाहता है?

प्रथम सार्जेण्ट—तो क्या हुआ? तुमसे प्रयोजन?

बाल—हमसे क्यों नहीं प्रयोजन? नागरिकता की रक्षा के लिए! फिर, हम भारतीय हैं कि नहीं? तू गोरा होकर अत्याचार करे! मैं काला होकर बोल भी न सकूँ? आँख रखकर भी उसे देखता रहूँ? हृदय रखकर भी सहानुभूति न दिखाऊँ? शब्द से भी उसकी सहायता न करूँ? यह कूटनीति? तो यह छलछद्म अब यहाँ नहीं चल सकता!

द्वितीय—(रोष में) तो तू सहायता करेगा?

बाल—अवश्य! यह भी पूछना है?

प्रथम—तू नहीं जानता कि शासन किसका है?

बाल—हां, हां, जानता हूँ शासन गोरों का है?

द्वितीय—तब?

बाल—तो सन् १८५७ से पूर्व? अब नहीं।

(१) स्थान—पूना, पोस्ट आफिस ।

बाल—कुर्ता, धोती, मराठी जूता ।

दो गोरे सर्जन—खाकी वेश (पुलिस) ।

सप्रे—धोती, कुर्त्ता, जूता दुपट्टा ।

पाञ्जपे—धोती, कुर्त्ता जूता, दुपट्टा ।

आगरकर—धोती, कोट, काली टोपी किस्ती नुमा ।

महीधर—धोती, कोट, दुपट्टा मराठी पगड़ी जूता ।

बर्वे— „ „ „ „ „

छत्रे— „ „ „ „ „

डावरे—धोती, कुर्त्ता, जूता दुपट्टा ।

जोशी—धोती, कुर्त्ता, दुपट्टा मराठी पगड़ी ।

द्वितीय अङ्क

(१) स्थान—व्यायाम शाला ।

आगरकर—धोती, कोट, काली किस्तीनुमा टोपी ।

धारोकर—धोती, कोट, मराठी पगड़ी, दुपट्टा ।

डावरे—धोती कुर्त्ता दुपट्टा ।

रानाडे—धोती, कोट, मराठी पगड़ी, दुपट्टा ।

शैलपुरकर—धोती, कुर्त्ता, दुपट्टा ।

न्यायाधीश—जज के वेश में

वकील, कारन्दीकर, वाष्टिष्टा वकील वेश में ।

प्रथम अङ्क

(१) स्थान—पूना पोस्ट आफिस की छड़दार खिड़कियों पर भीतर क्लर्क, बाहर टिकट, लिफाफा लेने वालों, रजिष्ट्री मनीआर्डर करने वालों की भीड़ में दो गोरे सर्जेण्टों का धक्का देने की मुद्रा में प्रवेश और उसे रोकने की अवस्था में बाल का भिड़ जाना, सप्रे के साथ बातचीत, पराञ्जपे, आगरकर, महीधर पन्त, बर्वे, प्रो० छत्रे।

(२) अध्ययन कक्षा में, बाल, धारोकर, सप्रे, आगरकर, डावरे जोशी गार्गे शास्त्री।

द्वितीय अङ्क

(१) स्थान—पूना, व्यायाम शाला।

डावरे, आगरकर, बाल, सप्रे, रानाडे, २ ग्रामीण, बर्भे शास्त्री, वैजापुर का, धारोकर, प्रो० छत्रे।

तृतीय अङ्क

स्थान—पूना, केसरी कार्यालय।

तिलक, सप्रे, बर्वे, डावरे, खप्पर्डे, पराञ्जपे, विपिनचन्द्र

(२) सूरत—कांग्रेस महाधिवेशन मण्डप।

अरविन्द घोष।

(३) बम्बई—कारागृह, निरीक्षक, लोकमान्य, न्यायाधीश, ३ शासन वकील, ४ तिलक, वकील।

(४) दिल्ली—राजभवन।

(५) केसरी कार्यालय ।

सप्रे

आगरकर

डावरे

लोकमान्य

केलकर

(६) दिल्ली राजभवन ।

१. राय साहब

२. खां साहब

३. सर सिंह

४. वायसराय

५. लोकमान्य

(७) नागपुर—कांग्रेस महाधिवेशन ।

सप्रे

डावरे

गांधी जी

लोकमान्य

—:०:—

॥ श्री ॥

लोकमान्य

प्रथम अङ्क

स्थान—(पूना का प्रधान पोस्ट आफिस । भीतर छड़दार खिड़कियों के भीतर सामने क्लर्क अपने-अपने कार्य में संलग्न । बाहर कोई किसी खिड़की पर मॉनीआर्डर के लिए. कोई रजिस्ट्री के लिए खड़ा है और दो गोरे सार्जेंएट आगे के खड़े लोगों को ढकेलकर टिकट लेने की मुद्रा में । इतने में दूसरी खिड़की पर खड़ा युवक उसे रोकने की मुद्रा में एक गोरे से डाँटकर कहता है ।)

बाल—भला धक्का देकर तू आगे क्यों जाना चाहता है ?

प्रथम सार्जेंएट—तो क्या हुआ ? तुमसे प्रयोजन ?

बाल—हमसे क्यों नहीं प्रयोजन ? नागरिकता की रक्षा के लिए ! फिर, हम भारतीय हैं कि नहीं ? तू गोरा होकर अत्याचार करे ! मैं काला होकर बोल भी न सकूँ ? आँख रखकर भी उसे देखता रहूँ ? हृदय रखकर भी सहानुभूति न दिखाऊँ ? शब्द से भी उसकी सहायता न करूँ ? यह कूटनीति ? तो यह छलछद्म अब यहाँ नहीं चल सकता !

द्वितीय—(रोष में) तो तू सहायता करेगा ?

बाल—अवश्य ! यह भी पूछना है ?

प्रथम—तू नहीं जानता कि शासन किसका है ?

बाल—हां, हां, जानता हूँ शासन गोरों का है ?

द्वितीय—तब ?

बाल—तो सन् १८५७ से पूर्व ? अब नहीं ।

द्वितीय—क्या कहा ? अब नहीं ?

बाल—हां ! हां ! ! फिर कहता हूँ, अब नहीं !

द्वितीय—बस, मुँह बन्दकर (रोल तानकर धक्का देकर बढ़ने का दुराग्रह करता हुआ) देख ! अभी भी ।

बाल—(धक्का देकर) वे दिन अब लद गये ।

प्रथम—(रोल तानकर बालक को धक्का देने की चेष्टा करता हुआ) बस, मुँह बन्दकर ।

बाल—(रोल छीनकर और उसे सिर पर तानकर) बस, इसी बल पर ? कहो ना सिर पर जमा दूँ ।

द्वितीय—(ऐंठकर) तू जानता नहीं कि हम लोग कौन हैं ?

बाल—(परिहास पूर्वक) हाँ जानता हूँ और अच्छी तरह जानता हूँ कि शरीर से गोरे और हृदय के काले तुम लोग अंग्रेज हो ! व्यापार के लिए बीत्ताभर भूमि की भिक्षा मांगकर समस्त देश को अधिकृत कर लेनेवाले तुम लोग अंग्रेज हो । अपने व्यापार के लिए अपने आश्रित देश के कलाकारों की कलाई काटकर उस देश की लोकोत्तर कला का ध्वंस करनेवाले तुम लोग अंग्रेज हो ! सबल शक्ति के समक्ष वैतसी वृत्ति दिखाने और दुर्बलों की दीनता पर सैंही गर्जना करनेवाले तुम लोग अंग्रेज हो !

(खिड़कियों पर खड़े लोगों का बाल की निर्भीकता पर चकित हो भीरुता प्रदर्शित करना ।)

प्रथम—जीवन से खेलवाड़ करनेवाला बालक ! यदि तू शासन से नहीं डरता ! तो अपने भविष्य से तो डरा कर !

बाल—क्या कहा ? शासन से ? भारतीय डरते हैं स्वदेशी शासन से ! विदेशी शासन से कदापि नहीं !! रही भविष्य से डरने की बात ! तो भविष्य से डर ही क्यों ? भविष्य का निर्माता तो कोई दूसरा है और न्यायी है, जो हमारे तुम्हारे ज्ञान-विज्ञान की परिधि से दूर सुदूर रहकर

न्याय करता है। फिर उस भविष्य की चिन्ता मुझे ही क्यों? तुम्हारे जैसे अंग्रेजों को भी तो उसकी चिन्ता होनी चाहिये कि दूसरे के देश में रहकर, उसके अन्न-जल से पलकर, अपनी भेदनीति के बल पर उसपर शासन का ऐसा अत्याचार ! ऐसा मिथ्यागर्व ! ऐसी विडम्बना !

द्वितीय—अब देखना है कि तुम कितने निर्भीक हो।

(दर्शकों का भीरुता प्रदर्शन करना)।

बाल—जब चाहो।

प्रथम—बहुत बढ़-बढ़कर बोल गये ! अच्छा, अब तू अपना नाम तो बता।

बाल—मेरा नाम ? लिख लो, मेरा नाम है बालगङ्गाधर।

प्रथम सैनिक—अच्छा ? तुम्हारा ही नाम है बालगङ्गाधर ?

बाल—हाँ, हाँ, मेरा ही नाम है बालगङ्गाधर !

(द्वितीय सैनिक डायरी में लिखता है)

प्रथम—पढ़ता है ?

बाल—हाँ, हाँ, पढ़ता हूँ।

प्रथम—किस विद्यालय में ?

बाल—यह क्यों बताऊँ ?

प्रथम—क्यों ?

बाल—ऐसे ही !

द्वितीय—बस ? इसी बूते पर इतनी ऐंठ ?

प्रथम—अपने विद्यालय का नाम बताने में डरता है !

बाल—अरे ! इसमें डर काहे का ? स्मरण रख, भारतीय युवा ईश्वर, धर्म और गुरु से ही डरता है।

(माधवराव सप्रे का प्रवेश)

सप्रे—(प्रवेशकर) नमस्कार ! बालगङ्गाधर जी ! नमस्कार।

बाल—(घूमकर) अच्छा, सप्रे जी ? नमस्कार ।

सप्रे—कहिए, क्या हो रहा है ?

बाल—कुछ नहीं ।

सप्रे—नहीं, कुछ तो अवश्य ....। आपकी मुख-मुद्रा बता रही है ।

प्रथम—(सप्रे से) कृपया एक मिनट !

सप्रे—(उसके समीप आकर) कहिये ।

द्वितीय—(सप्रे के कान में) ।

सप्रे—हाँ ! हाँ ! उसी विद्यालय में ।

(दूसरा सैनिक डायरी में लिखता है)

प्रथम—(द्वितीय से बाल का संकेत कर) यह बड़ा उद्दण्ड है ।

सप्रे—(प्रथम से) तुम लोगों से बढ़कर ?

बाल—प्रथम से, मुँह सँभालकर बोल । अन्यथा ....

(दर्शक आश्चर्यचकित भयभीत होते हैं)

प्रथम—(द्वितीय से) सुनते हैं कि यह विद्यालय में भी ऐसा ही निर्भीक रहता है । किसी से डरता नहीं ।

द्वितीय—(प्रथम से) नहीं डरता होगा । पर, कल से तो वह डरेगा ही, जब हमारा प्रेषित अप-स्तुति-पत्र आज उसके प्रधानाध्यापक को प्राप्त हो जायेगा ।

प्रथम—हाँ, तब इसे ज्ञात होगा कि किसी अंग्रेज से भिड़ने का क्या फल होता है ?

द्वितीय—(धीरे-धीरे साथी से) साक्षात् संघर्ष में उतरना तो हम लोगों के सिद्धान्त संस्कार के विरुद्ध है । हमारी जाति शक्ति रखकर भी लड़ती नहीं, लड़ाती है !

प्रथम—ऐसे के लिए यही औषध ठीक है।

(एक ओर दोनों चलते हैं, दूसरी ओर बाल भी सप्रे के साथ चलते और मार्ग में)।

बाल—भाई सप्रे! देखा आपने कि एक अंग्रेज भारतीय को किस दृष्टि से देखता है। यह सोलहो आने सत्य है कि अंग्रेजों के विचार में कृमि कीट का कोई मूल्य है। किन्तु भारतीयों का तो कुछ भी मूल्य नहीं।

सप्रे—इसमें क्या सन्देह? ऐसा अपमान! ऐसा अत्याचार! तो यह यहाँ बराबर करते रहते हैं।

सभी दर्शक—सही है।

सप्रे—किन्तु, इसके प्रतिकार का उपाय ही क्या है?

बाल— प्रतिकार का? प्रतिकार का उपाय क्यों नहीं? प्रतिकार का उपाय है ब्रिटिश शासन का सर्वथा उन्मूलन! और उसका अमोघ साधन है वर्तमान शासन के विरुद्ध प्रबल राष्ट्रिय आन्दोलन !!

सप्रे—(आश्चर्य से) राष्ट्रिय आन्दोलन?

बाल—हां! हां !! राष्ट्रिय आन्दोलन !!! आप चकित क्यों हो रहे हैं, सप्रे जी?

सप्रे—मैं चकित हो रहा हूँ देश की वर्तमान दुःस्थिति पर!

बाल—हां, आपका यही तात्पर्य है न कि वह आन्दोलन करेगा कौन? जनता जहां लाल पगड़ी देखकर काँप उठती और पलायमान हो जाती है, वहां ऐसा आन्दोलन चलेगा कैसे?

सप्रे—सोलहो आने सही!

बाल—नहीं, नहीं, सोलहो आने गलत!

सप्रे—गलत?

बाल—और क्या? इसलिए कि मनुष्य को विशेषतया भारतीय

हृदय को सर्वाधिक प्रिय धर्म ही है। जब उसके हृदय में यह बात बैठ जावेगी कि इस शासन से हमारा धर्म लुप्त हो रहा है। तब वह उसकी रक्षा के लिए सर्वस्व बलिदान करने को सन्नद्ध हो सकता है। उस धर्माभिमानी का साम्मुख्य करके भी राज्य शक्ति सफल नहीं हो सकती।

सप्रे—ऐसा?

बाल—आप कहते हैं कि ऐसा? सन् १८५७ के विद्रोह का मूल-कारण क्या था? अर्थैषणा? पदमान का आकर्षण? देशोद्धार की प्रेरणा? नहीं, नहीं! उसके मूल में था एकमात्र धर्मतत्वाभिमान! धर्मोद्धार का अभियान! आज की जनता उसी प्रकार जागरुक हो सकती है! यदि उसे उन्नायक मिले! जिसकी वाणी में बल हो, लेखनी में ओज और आग हो। और सबसे अधिक उसके सङ्कल्प में स्वस्त्ययन एवं चिन्तननिष्ठा में हो पुण्याहवाचन!

(सप्रे चकित हो बाल का निर्निमेष दृष्टि से मुँह देखते हैं)

बाल—आप चकित क्यों हो रहे हैं?

सप्रे—आपके इस सतर्कप्रतिपादन पर।

बाल—भाई, इसमें तर्क क्या है? बात सीधी है। आप बताइये मनुष्य को सबसे अधिक प्रिय क्या है?

सप्रे—धन!

बाल—धन ही प्रिय है न! पर, पुत्रकलत्र की रक्षा के लिए उस सर्वाधिक प्रिय धन को भी संसार उत्सर्ग करता है न!

सप्रे—जी हां।

बाल—और फिर उसी सर्वाधिक प्रिय पुत्र-कलत्र का! पुत्र कलत्र का ही क्यों अपने प्रिय शरीर तक का उत्सर्ग संसार करता है या नहीं!

सप्रे—करता है। (सप्रे सोचने लगते हैं)

बाल—सोचते क्या हो, कहो कि धर्म के लिए।

सप्रे - हां, धर्म के लिए ही।

बाल – धर्म के लिए ही नहीं? धर्मप्राण गुरु गोविन्द के बीर बालकों का हँसते-हँसते दीवाल में चुन जाने में कारण था धन? पदमान का प्रलोभन? भू-सम्पत्ति के संरक्षण की आकांक्षा? वासना तृप्ति का उल्लास विलास? नहीं! नहीं!! कदापि नहीं!!! उसके मूल में थी एक मात्र धर्माभिमान की अप्रतिहत ज्वाला। शिबि, दधीचि, हरिश्चन्द्र के जीवनसर्वस्व में उसी धर्म की थी असाधारण निष्ठा। जिससे उनके धर्म, विह्वल स्निग्ध अन्तःकरण पर स्वशरीर पुत्र-कलत्र या धन-धरती का राजस रङ्ग न चढ़ सका! धर्म प्राण को असिधारा क्या? अग्नि जल, वायु तक की विभीषिका विचलित नहीं कर सकती? उस सहिष्णु धर्म भावना की लोल लहरियों के घर्षण से न जाने लोकैषणा के कितने गिरिगह्वर घिसते विलीन होते रहते हैं, सप्रेजी!

सप्रे – सोलहो आने सही।

(सुनते मुस्कराते हुए परांजपे का प्रवेश)

परांजपे—नमस्कार बाल जी!

बाल – अच्छा? परांजपे जी! नमस्कार! नमस्कार!

सप्रे—नमस्कार, परांजपे जी!

परांजपे—नमस्कार, सप्रेजी! नमस्कार!! कहिये किसे सोलहो आने ठीक कर रहे हैं?

बाल—ठीक नहीं कर रहे हैं, अब ठीक करना है।

परांजपे—किसे?

बाल—ब्रिटिश शासन को।

परांजपे—आपकी कबीर बाँसी समझ में नहीं आती, फिर भी ईश्वर आपकी वाणी सफल करे कि ब्रिटिश शासन को आप ठीक कर सकें।

बाल—यदि आप जैसे मित्रों का सहयोग मिले तो इसमें सन्देह नहीं कि ब्रिटिश शासन अब भारत में ठहर नहीं सकता। उसके पापों का घड़ा अब फूटने की ही स्थिति में आ गया है, पराञ्जपे जी।

पराञ्जपे—माना कि भारत से ब्रिटिश शासन अब उठ जावेगा। किन्तु उसके स्थान पर ?

बाल—उसके स्थान पर ? उसके स्थान पर होगा भारतीय शासन !

पराञ्जपे—ब्रिटिश शासन के स्थान पर होगा भारतीय शासन ?

बाल—और क्या ?

पराञ्जपे—भाई ! भारत में तो हिन्दु, यवन, ईसाई बसते हैं, फिर इनकी शासन नीति क्या होगी ?

बाल—क्या कहा ? भारत की शासन नीति क्या होगी ?

सप्रे—हां, यही कि ब्रिटिश शासन के स्थान पर अधिष्ठित भारतीय शासन नीति क्या होगी ?

बाल—(परिहासपूर्वक) भारत की शासन नीति ? भारत की शासन नीति होगी विशुद्ध धर्मापेक्ष ! पराञ्जपे जी !

पराञ्जपे—क्या कहा ? भारत की नीति होगी धर्मापेक्ष ?

बाल—तो इसमें आपको आश्चर्य क्यों हो रहा है, पराञ्जपे जी ?

पराञ्जपे—मुझे ही आश्चर्य नहीं हो रहा है ! विश्व का राजनीति नभोमण्डल उस दिन आश्चर्य धूम केतु से व्याप्त एवं व्याकुल हो उठेगा।

बाल—नहीं, ऐसा नहीं, वस्तुतः उस दिन पाश्चात्य राजनीति से सन्तप्त मानवता भारत की धर्मापेक्ष नीति के शान्त जलद पटल की शीतल छाया में जीवित हो उठेगी।

सप्रे—(पराञ्जपे की ओर लक्ष्यकर) अर्थात् हिन्दुयवन ईसाई जैसे विविध धर्म व्याप्त भारत में धर्मापेक्ष राजनीति को लोकप्रियता की मान्यता कैसे मिल सकती है, आपका यही तो तात्पर्य है, पराञ्जपे जी ?

पराञ्जपे - हां, यही कि धर्मापेक्ष राजनीति यवन, ईसाई को कैसे आकृष्ट कर सकती है, सप्रेजी ?

बाल—जिस जाति या सम्प्रदाय को धर्मापेक्ष राजनीति में निष्ठा या विश्वास नहीं, उसे विश्व में रहने की आवश्यकता नहीं। ऐसे अधर्माश्रयी विचारों से ही आज का मानव साक्षात् दानव बन रहा है और जीवन का सुधाकर ज्ञान-विज्ञान आज प्रलयङ्कर भास्कर जैसा विनाशक हो रहा है।

पराञ्जपे—धर्मनिरपेक्ष राजनीति में निष्ठावान् को भले ही विश्व में रहने का अधिकार न हो। पर उसे धर्मापेक्ष राजनीति में कैसे विश्वास होगा बाल जी ? यह प्रश्न उत्तर की प्रतीक्षा करता है। इसके समुचित समाधान के बिना जिज्ञासा की तृप्ति नहीं हो सकती। हिन्दुओं की धर्मापेक्ष राजनीति यवन, ईसाई की लोकप्रियता कैसे प्राप्त कर सकती है ? उसी प्रकार यवन ईसाई की धर्मापेक्ष राजनीति हिन्दु की लोकप्रियता कैसे प्राप्त कर सकती है।

बाल—(अट्टहासपूर्वक) अच्छा ? यह बात ? भाई पराञ्जपे ! 'धर्म सापेक्ष' के धर्म शब्द से साधारण धर्म का ही तात्पर्य है। उस धृति, क्षमादि जैसे साधारण धर्म से किसी भी सम्प्रदाय या धर्म का विरोध नहीं। धृति, क्षमा, अस्तेय, अहिंसा में जैसे हिन्दुओं की निष्ठा है, वैसे ही यवन ईसाई की भी।

सप्रे—हां, यह तो है।

बाल—क्या हिन्दुओं की धृति क्षमा यवन ईसाई की धृति क्षमा से विपरीत है ? या यवन ईसाई की धृति क्षमा हिन्दुओं की धृति क्षमा से भिन्न। जब धृति क्षमादि जैसे साधारण धर्म में किसी भी यवन ईसाई को विरोध नहीं। तब, भला धर्मापेक्ष राजनीति से उनको कैसे विरोध या अवरोध हो सकता है ?

पराञ्जपे—मान गया बाल जी ! मान गया। आपका तर्क अकाट्य है।

सप्रे—वस्तुतः आज समझ में आया कि धर्मसापेक्ष राजनीति से किसी को भी विरोध नहीं हो सकता।

पराञ्जपे—सचमुच, धर्मसापेक्ष राजनीति ही वस्तुतः लोकप्रियता प्राप्त कर सकती है।

बाल—निःसन्देह। यही नहीं, संसार में सर्वत्र व्याप्त दुराचार, अत्याचार, भ्रष्टाचार को कोई भी शासन अपनी सैन्यशक्ति के बल पर मिटा नहीं सकता। उनको मिटाने और सदाचार को बढ़ाने के लिए धर्मसापेक्ष राजनीति का प्रचलन परमावश्यक ही नहीं, सर्वथा श्रेयस्कर है।

सप्रे (चकित मुद्रा में) यह कैसे? जहाँ धर्म की सर्वत्र उपेक्षा हो रही है, वहाँ आप के द्वारा उसकी अपेक्षा का समर्थन समझ में नहीं आता।

बाल—कैसे समझ में आवेगा, सप्रेजी? धर्म तत्व को समझने के लिए कुछ श्रम और कुछ प्राक्तन पुण्य भी चाहिये। आज तो इन दोनों का अत्यन्ताभाव ही है, फिर समझ में कैसे आवे? अच्छा! (चौमुहानी का संकेत कर) मान लीजिए कि उस चौमुहानी पर कल्यवर्त्तमञ्जूषा एकान्त में पड़ी हो, तो उधर से जानेवाले पथिक के हृदय में उसे स्पर्श तक न करने की भावना का उदय करानेवाला साधन आधुनिक राजनीति में कहीं है? या हो सकता है?

सप्रे—हां, अभी तो नहीं है। पर, भविष्य में भी नहीं हो सकता।

बाल—सप्रेजी! आधुनिक राजनीति में! अर्थ-प्रधान राजनीति में तो वह साधन त्रिकाल में भी सम्भव नहीं। यही क्यों? जिस विश्वशान्ति का स्वप्न आज का संसार देख रहा है, वह वर्तमान राजनीति में केवल स्वप्न ही जैसा मिथ्या है।

सप्रे—स्वप्न ही जैसा मिथ्या है?

बाल—और क्या! स्मरण रहे, जब तक हमारे पुरुषार्थ चतुष्टय में

धर्म की प्रधानता नहीं होती, तब तक विश्व में शान्ति की चर्चा विश्व-विडम्बना या आत्मवञ्चना के अतिरिक्त और क्या है? भाई, हमलोग प्रकृत प्रसङ्ग से बहुत दूर चले आये, अब इसे पल्लवित नहीं करना है, तदर्थ कार्य-कलाप का विचार करना है।

पराञ्जपे—हां, ब्रिटिश शासन को ठीक करनेवाली बात सुनने के लिए अन्तःकरण अतृप्त ही रह गया।

बाल—तो श्रवणमात्र से ही अन्तःकरण की तृप्ति चाहते हैं या बलिदान करके भी।

पराञ्जपे—बलिदान करके भी! आत्मबलिदान तक करने को हम सर्वथा सन्नद्ध हैं ब्रिटिश शासन का उन्मूलन करने के लिए बाल जी!

बाल—मातृ-भूमि अपनी योग्य सन्तान से यही आशा करती है। कहिये सप्रेजी!

सप्रे—मैं तो पहले ही अपने को आपके हाथों में समर्पित कर चुका हूँ (अपने शरीर की ओर संकेत कर) कि इस शरीर पर आपका पूर्ण अधिकार है, जैसा चाहें बिनियोग कर सकते हैं।

बाल—तब आगरकर जी का आगमन अपेक्षित है, उनकी सम्मति तो बहुत पहिले मिल चुकी है फिर भी ... ...।

सप्रे—तो जाकर निवेदन करूँ?

बाल—अवश्य (सप्रे जी चलने लगते हैं) नहीं, ठहरिये (घड़ी देखकर) घर पर न होंगे। गणेश जी का दर्शन कर अब वे आते ही होंगे।

पराञ्जपे—क्या आगरकर जी देवदर्शन ... ...।

बाल—हां, हां, कहिये। क्या उनके देवदर्शन पर आश्चर्य हो रहा है?

पराञ्जपे—आज के युग में तो अब इसकी कोई उपयोगिता नहीं रही।

बाल—देवदर्शन की उपयोगिता समझने के लिए उपयुक्त ज्ञान

अपेक्षित है। मनोनिग्रह के लिए तो देवदर्शन अत्यन्त सरल एवं अलभ्य साधन है।

पराञ्जपे – हां, यह तो सही है।

बाल—गंभीरता से विचार करने पर ऐसी सब बातें सही निकलेंगी, पर आज का मानव उसे समझने की चेष्टा ही नहीं करता। वह सन्तति-नीरोध, वस्तु नियन्त्रण तो करता है, पर मनोनिग्रह की तो बात भी नहीं सोचता।

सप्रे – वस्तुत: वस्तु नियन्त्रण की अपेक्षा मनोनियन्त्रण अधिक आवश्यक है।

बाल – ऐसा न होने से ही तो आज का संसार असार एवं अशान्त हो रहा है।

सप्रे—वास्तविक शान्ति सुख के लिए मन का निग्रह परमावश्यक है।

(आगरकर जी का प्रवेश। सभी खड़े होकर अभिवादन करते हैं, आगरकर जी हाथ उठाकर आशीर्वाद देते हैं और सब यथास्थान बैठते हैं।)

आगरकर—किसका निग्रह परमावश्यक हो रहा है, सप्रेजी ?

बाल—किसी का नहीं। यों ही मनोरञ्जन हो रहा था।

आगरकर—हाँ, कर्त्तव्य-पथ में प्रगति प्राप्त करने के लिए मनोरञ्जन भी परमावश्यक है, जबकि वह मनोरञ्जन मनोबल के लिए हो। हां, भाई बाल! क्या आज आपका किसी गोरे सर्जन से संघर्ष हो गया है ?

सप्रे - आपको कैसे ज्ञात हुआ ?

आगरकर—उन दोनों के संयुक्त आरोपपत्र को शिक्षा संचालक ने शीघ्र कड़ी कार्यवाही करने के लिए आपके प्रधानाचार्य के पास भेजा है, जिसकी सूचना विद्युत् की तरह नगर भर में व्याप्त हो गयी है।

सप्रे—तब ?

बाल तब क्या ? वे मुझे अधिक से अधिक कालेज से निकाल सकते हैं ?

आगरकर—यदि क्षमायाचना से काम चल जाय।

बाल—यह तो त्रिकाल में भी नहीं हो सकता। फिर मनोगत सारी योजनाएँ बिडम्बना में परिणत हो जायेंगी। इच्छा थी कुछ दिन और अध्ययन कर लेने की। यदि वह सम्मानपूर्वक नहीं हो सकता तो मैं उसे भी दूर से ही नमस्कार करूँगा। मेरे अध्ययन का लक्ष्य द्रव्योपार्जन नहीं, स्वातन्त्र्योपार्जन है। जिस ब्रिटिश शासन के उन्मूलन करने का मैं सङ्कल्प कर चुका हूँ। आज से नहीं, बहुत पहिले से रातों दिन उसकी पूर्ति का ही स्वप्न देखा करता हूँ। उस शासन के प्रभाव या आतङ्क से भला मैं क्षमा की याचना करूँ ? तो मृत्यु की याचना क्यों न करूँ ? ऐसी क्षमायाचना से मृत्यु की याचना एवं आलिङ्गन देश के लिए सर्वाधिक श्रेयस्कर सिद्ध होगा, आगरकर जी।

आगरकर—यह तो है ही।

सप्रे—(कान में आगरकर जी से)

आगरकर (सप्रे से) हां हां ! उसके लिए तो मैं सारी शक्ति लगाऊँगा ही। और मेरा विश्वास भी है कि वे 'ना' नहीं कर सकते।

सप्रे—अवश्य।

बाल—देशोद्धार के लिए इस शरीर का सङ्कल्प कर चुका हूँ। और उसके लिए मेरी बुद्धि विवेक एवं ज्ञान पर्याप्त है। हां, यदि ८ मास और अध्ययन का अवसर मिल जाता, तो उसे भी समाप्त कर लेता।

आगरकर—मिलेगा क्यों नहीं ? अवश्य मिलेगा।

सप्रे—अवश्य मिलेगा। आप पर (आगरकर जी को लक्ष्य कर) प्रधानाचार्य श्री मोरेश्वर महाशय की बड़ी कृपा रहती है। वह आपकी बात टाल नहीं सकते।

आगरकर—वह बड़े ही महान् हैं। इसी से तो वर्तमान शासन

की दृष्टि में वे खटकते हैं। पर, उन्हें इसकी तनिक भी चिन्ता नहीं। वे कक्षा में भी प्रसङ्गवश सिंह की तरह दहाड़ते रहते हैं।

बाल—सुना है। इसी से मेरी उनपर अगाध श्रद्धा भी है।

सप्रे—वस्तुतः वे श्रद्धा के पात्र हैं।

बाल—शासन समझे या न समझे। नागरिक आदर करें या न करें। पर, विद्यार्थी हृदयतल से जिस गुरु को श्रद्धा आदर करते हैं, उसके लिए इससे अधिक मूल्यवान् आदर सम्मान की वस्तु संसार में है ही नहीं। वह गुरु धन्य है, जिसके विद्यार्थी निश्छल हृदय से आदर करते हैं और वह विद्यार्थी भी कम सौभाग्यशील नहीं है, जो ऐसे उदात्त गुरु से विद्याध्ययन करते हैं।

आगरकर—इसमें क्या सन्देह? गुरु भक्ति से उपार्जित विद्या और विद्यार्थी अवश्य सफल होते हैं, जो विद्यार्थी अपने पवित्र हृदय में जितने गंभीर स्तर पर गुरु-भक्ति रखता है, वह संसार में उतना ही अधिक उत्कर्ष प्राप्त करता है।

सप्रे—यदि 'बाल' के ऊपर किये गये आरोप के कारण निष्कासन सत्य है, तो यह आवश्यक है इनका प्रवेश अपने कालेज में अवश्य कर दिया जाय। अन्यथा उन गोरों को अपनी शक्ति पर गर्व करने का अवसर मिल जायेगा।

आगरकर—अवश्य! अवश्य!! बाल का प्रवेश हमारे ही कालेज में होगा। मैं तो कहूँगा ही, हमारे प्रधानाचार्य श्री मोरेश्वर महाशय स्वयं बाल के आचार-विचार व्यवहार से विशेषतया इनकी वाग्मिता से अधिक प्रभावित हैं। उन्होंने एक दिन कालेज की भरी सभा में कहा था कि सिटी कालेज का छात्र श्री बालगङ्गाधर एक आदर्श छात्र है, उसकी सत्यवादिता, अध्ययनशीलता एवं कर्तव्यपरायणता पर किसी विद्यालय को ही क्यों; राष्ट्र को भी गर्व हो सकता है। ऐसे ही विद्यार्थियों से राष्ट्र का उद्धार होता है।

सप्रे—तब तो आप बाल के प्रवेश कराने में अवश्य सफल होंगे।

आगरकर—मेरे द्वारा सफलता क्या! बाल स्वयं सफल हैं! बाल तो स्वयं दूसरे का प्रवेश करा सकते हैं।

सप्रे—आपकी वाणी सफल हो।

(सिटी कालेज का चपरासी प्रवेशकर बाल को एक पत्र देता है जिसके आवरण पृष्ठ पर प्रेषक प्रधानाचार्य सिटी कालेज, पूना लिखा है)

सप्रे—(हाथ में लेकर) यह तो वही आदेशपत्र प्रतीत हो रहा है, जिसकी कल्पना कुछ देर पूर्व की गयी थी।

आगरकर—(सप्रे से) अच्छा खोलिये भी तो।

सप्रे—(खोलकर, पढ़कर) हाँ, वही तो है।

आगरकर—लिखा क्या है?

बाल—लिखा क्या है! यही लिखा होगा कि आपने दो अंग्रेज परिवारों के साथ जो अशिष्टता का व्यवहार किया है, उसके लिए आप लिखित क्षमा-याचना करें। अन्यथा आज से अपने को विद्यालय से निष्कासित समझें। बस!

सप्रे—और क्या? यही तो है।

आगरकर—कोई चिन्ता नहीं।

बाल—नहीं आगरकर जी! चिन्ता क्यों नहीं? मुझे अपने अध्ययन की चिन्ता नहीं है। पर, इस क्रूर शासन ने हमारे देश को कितना दलित, कितना घृणित बना रखा है, इसकी पूर्ण अभिव्यक्ति तो इस पत्र से ही होती है। जिस देश का उच्च शिक्षाध्यक्ष इस प्रकार का अविचारित निर्णय करता है, उस देश के लिए कितनी चिन्ता हो सकती है, उसकी कोई सीमा हो ही नहीं सकती। वस्तुतः ब्रिटिश शासन ने आज हमारे देश को, हमारे देश के अधिवासियों को ही चिन्त्य नहीं बना दिया है, प्रत्युत आज हमारे देश के जलवायु तत्व तक को विकृत एवं विपन्न बना दिया है।

सप्रे—तो किया क्या जाय ?

बाल—क्या किया जाय ? किया जायगा इस ब्रिटिश शासन का भारत से उन्मूलन। वस्तुतः यह घटना मुझे आन्दोलन खड़ा करने की प्रेरणा के लिए ही हुई है।

सप्रे—बाल जी! आप विश्वास रखिये। हम चार व्यक्ति तो आप के साथ हैं। आपके हाथ में हैं। आपके आदेश की प्रतीक्षा में हमलोग सदा वर्तमान हैं।

बाल—भाई! आन्दोलन के लिए कार्यकर्त्ताओं की आवश्यकता है। कार्यकर्त्ता भी देशोद्धार की आहुति के लिए शिक्षित, दीक्षित और सर्वविधि परीक्षित होने चाहिये। तदर्थ हमलोगों को भारतीय शिक्षा पद्धति का प्रतिष्ठान करके कुछ वर्षों में अपने आचार-विचार अपनी गति-विधि एवं नीति रीति के स्नातक निष्पन्न करना चाहिये जिनके नस-नस में देशोद्धार का भाव भरा हो। यह मेकाल के परिचालित विद्यालयों से निकले हुए दग्धाक्षरों से हमारा आन्दोलन नहीं सफल हो सकता।

आगरकर—हमारा भी यही मत है।

बाल—यह शुभ लक्षण है। हम लोग ब्राह्मण हैं। 'ब्राह्मणस्य तुदेहोऽयं क्षुद्रकामाय नेष्यते' के अनुसार जब हमारा शरीर ही महान् के लिए है, तो देशोद्धार के लिए पहिले शिक्षा का उद्धार परमावश्यक है। शिक्षा ही राष्ट्र का प्राण है। माता-पिता तो पुत्र को केवल जन्म देते हैं जीवनसुधा तो उसे शिक्षा से ही मिलती है। मेकाले की सरणि पर सञ्चालित शिक्षा हमारे हृदय से लेकर मस्तिष्क तक में विकृत विदेशी रङ्ग भरती है। इसी से हमारी दृष्टि में दर्पण की तरह सब विपरीत ही दिखाई देता है। हमारी शिक्षा विधि से युवकों के हृदय में विचार भाव का परिष्कार एवं विकास होगा। अनेकता में एकता का दिव्य दर्शन होगा। देश धर्म के लिए बलिदान की त्यागभावना होगी। हमारी

शिक्षा से शिक्षित स्नातकों का मस्तक गुरु चरणों पर अवनत होने में जहाँ कुसुम-सा कोमल होगा, वहां देशद्रोहियों के समक्ष बज्र सा कठोर।

आगरकर—अवश्य।

पराञ्जपे—बस, अब आप योजना बनाइए। शिक्षा की सेवा के लिए हम चारों के शरीर आपकी छाया बनकर रहेंगे।

बाल—तो यह निश्चय है कि यह विदेशी ब्रिटिश शासन अब अधिक दिनों तक नहीं ठहर सकता। उसकी अवधि पूरी हो गयी। उसका अवसान अब निश्चित है। हां, दो दिन के भीतर मैं आप लोगों के समक्ष शिक्षा योजना प्रस्तुत करता हूँ (कुछ चिन्तन मुद्रा में) हां, नामकरण तो कर दिया।

सप्रे—नामकरण कर दिया ?

बाल—हां, नामकरण कर दिया।

आगरकर—जैसे ?

बाल—अभिनव महाराष्ट्र शिक्षण-परिषद।

आगरकर—धन्यवाद ! बाल जी धन्यवाद ! बहुत सटीक नामकरण किया आपने ! 'महाराष्ट्र' की अर्थाभिव्यक्ति तो बड़ी व्यापक एवं विलक्षण होगी।

बाल—सभी विलक्षण होंगे।

सप्रे—जब हमही लोग विलक्षण हैं, तो हम लोगों का कार्य क्यों न विलक्षण होगा ? (सभी हँसते हैं)

(बाल के पितृव्य महीधर पन्त का भीतर से आना और सब उठ खड़े होते हैं, वह बाल से कहने लगते हैं)

महीधर—बत्स बाल ! मैं गणेशदर्शन करने जा रहा हूँ। एक घंटे के भीतर आऊँगा।

बाल—जैसी आज्ञा। एक प्रार्थना है (मस्तक झुकाये)।

महीधर—हां, हां, कहिए। सङ्कोच क्यों ?

बाल—(सङ्कोच मुद्रा में) फर्ग्यूसन कालेज में नाम लिखाऊँ ?

महीधर—क्यों ? अब तो वर्ष के केवल ८ मास ही रह गये ?

बाल—कुछ ऐसी बाते हैं। पीछे निवेदन करूँगा। इस समय आज्ञा चाहिये।

महीधर—यदि आप चाहते हैं तो मेरी आज्ञा ही है। मैं समझता हूँ कि बाल अनुचित नहीं कर सकते, फिर औचित्य के विरुद्ध की प्रेरणा मैं नहीं कर सकता।

बाल—(हाथ जोड़े) जैसी आज्ञा (महीधर पन्त का प्रस्थान।)

(दूसरी ओर से बाल आदि का जलपान के लिए भीतर प्रवेश)

(मार्ग में प्रो० बर्वे से भेंट)

बर्वे—महीधर जी, नमस्कार।

महीधर—आहा! प्रो० साहब जी नमस्कार! नमस्कार! कहिये किधर की यात्रा ?

बर्वे—(संकुचित सा) यात्रा क्या!

महीधर—कहाँ जाना हो रहा है ?

बर्वे—जाना तो आपके ही यहां हो रहा है।

महीधर—बहुत अच्छा! बड़ी कृपा! कहिये क्या आज्ञा ?

बर्वे—आज्ञा क्या। प्रार्थना है।

महीधर—प्रार्थना नहीं! आज्ञा!! गुरुचरण प्रार्थना नहीं, आदेश प्रदान करते हैं।

बर्वे—(कान में)

महीधर—ऐसा ? हां, तब इसीलिए वह फर्ग्यूसन कालेज में प्रवेश करने की बात कर रहे थे।

बर्वे—आप मेरी कठिनाई तो जानते ही हैं।

महीधर—मैं अच्छी तरह जानता हूँ। वह कठिनाई केवल आपके

ही ऊपर नहीं है। समस्त शिक्षकों पर है। ऐसे ही अन्यायपूर्ण पक्षपात पर 'पराधीनता दुख महा' जैसे पराधीनता खलती और 'सुख जग में स्वाधीन' जैसी स्वाधीनता की स्मृति जाग उठती है। फिर इसमें आपका दोष? यह दोष तो शिक्षा-विधान का भी नहीं, वर्तमान ब्रिटिश शासन नीति का ही है। तब?

बर्वे—तब मैं क्या करूँ? इससे बाल तो अपराधी नहीं।

महीधर—रायबहादुर जी! यदि आपकी दृष्टि में भी बाल अपराधी नहीं, तो क्षमायाचना के लिए प्रेरित करना कर्त्तव्य विरुद्ध होगा, मर्यादा विपरीत होगा। और उसके अध्ययन का उद्देश्य अर्थैषणा भी तो नहीं, रहा ज्ञानार्जन, तो इतना ज्ञान तो उसमें आ ही गया है, जिससे वह अपने कर्त्तव्याकर्तव्य उचितानुचित का निर्णय कर सकेगा। उसके पिता ने उसे गीता ज्ञान का पण्डित बना रखा है और आपके सामने भी तो विद्यालय का प्रश्न है जिस पर शासन की शनिदृष्टि पड़े बिना रह नहीं सकती? आपकी यह विशेषता जो मैं समझता हूँ; वह भी यह समझता और कहता है?

बर्वे—यही बात है। बाल है तो अभी बालक। पर वह वयोवृद्ध-सा व्यवहार करता है। पढ़ने-लिखने, बोलने और आचरण करने में वह सदा सतर्क रहता है। उसमें नेतृत्व शक्ति है। किसी दिन वह भारत का महान् गौरव मानवर्धन होगा।

महीधर—(हाथ जोड़े) आपकी वाणी सफल हो। ब्राह्मण को इससे अधिक चाहिये क्या? औरों को भूमि चाहिये। सम्पत्ति चाहिये। द्रव्य राशि चाहिये। ब्राह्मणों को यशःशरीर के अतिरिक्त और चाहिये क्या?

बर्वे—मैंने बाल को सन्निकट से देखा है। आर्यमर्यादा की अपूर्व निष्ठा, सत्यभाषण में अद्भुत दृढ़ता एवं देशोद्धार की उत्कट कामना है। उसमें स्वयं बढने और दूसरों को बढ़ाने की शक्ति है। उसके उठने, बैठने

चलने, फिरने में भी उदात्तता एवं गम्भीरता का सजीव रूप दिखायी देता है। उसके भाषण की सतर्कता एवं सटीकता तो और भी विलक्षण है। वस्तुतः बड़े पुण्य और सौभाग्य से ऐसा लड़का आपको मिला है।

महीधर—यह सब आप जैसे गुरुजनों के आर्शीवाद का ही फल है। अपने विचारों पर अविचल रहने की उसमें अपूर्व दृढता है। आपमें उसकी अपूर्व श्रद्धा है। पर, इस घटना से उसके हृदय पर चोट लगी है, जिससे विद्यालय छोड़ने का दुःख होने पर भी वह क्षमा याचना के लिए कथमपि प्रवृत्त नहीं होता।

बर्वे—मैं जानता हूँ, वह बड़ा दृढ़ निश्चयी है।

महीधर—कार्यारम्भ हो जाने पर, बार-बार विघ्नों के आने पर भी वह चञ्चल होना नहीं जानता। उपनयन के दिन से जो सन्ध्या का आरम्भ हुआ, उसमें आजतक कभी भी विलोप नहीं होने पाया।

बर्वे—उसमें गणित की भी विलक्षण प्रतिभा है।

महीधर—भाई जी ने दो रात को ग्रहों का परिचय कराया। अब वह रात को उठ-उठकर ग्रहों को देखता और बड़ी कुशलता से उनकी परस्पर दूरी और गति विधि पर विचार करता रहता है। उसे एकबार कोई वस्तु देख लेना या सुन लेना चाहिये। फिर जब चाहिये उसे पूछ लीजिए। उसमें वह कभी चूक नहीं कर सकता।

बर्वे—हां! हां!! उसमें बड़ी अपूर्वता है।

(प्रो० छत्रे का आगमन)

छत्रे—(बर्वे को लक्ष्यकर) नमस्कार, रायसाहब!

बर्वे—नमस्कार! नमस्कार!!

महीधर—प्रो. छत्रे जी? नमस्कार! नमस्कार!!

छत्रे—नमस्कार। हाँ! प्रो. साहब! आपके यहाँ कोई छात्र 'बाल' है?

बर्वे—बालगङ्गाधर ?

छत्रे—हां, हाँ !! बालगङ्गाधर ।

बर्वे—हाँ, बालगङ्गाधर नाम का एक छात्र तो है ।

छत्रे—वह बड़ा ही विलक्षण एवं भविष्णु छात्र है ।

(प्रो० बर्वे और महीधर पन्त जिज्ञासु की तरह चकित हो रहे हैं)

बर्वे—कैसे ?

छत्रे—वह एक दिन न जाने कैसे हमारे यहाँ पहुँच गया और उसने ग्रहों की स्थिति के विषय में अपनी विभिन्न जिज्ञासा से मुझे कौतूहल में डाल दिया । पहिले तो उसके प्रश्न ही कौतूहलोत्पादक हुए, उसपर जब मैं उत्तर देने को प्रवृत्त हुआ तो वह स्वयं आगे-आगे बोलने लगा । तब मैंने उसके परिज्ञान की परीक्षा की । वह यथार्थ उत्तर से उत्तीर्ण । जब मैंने उसका परिचय पूछा तो आपके विद्यालय का अपने को छात्र बताया । बड़ा ही विलक्षण एवं भविष्णु छात्र है ।

बर्वे—विलक्षण तो वह है ही । खगोल का भी उसे ज्ञान है, यह बात तो मैं आज ही सुनता हूँ ।

छत्रे—यदि वह अपनी जिज्ञासाओं का यों ही समाधान पाता गया तो कुछ ही दिनों में वह गणित के साथ खगोल विद्या का भी अधिकारी विद्वान् हो जायगा ।

महीधर—(प्रसन्न हो) आपकी वाणी सफल हो । जब गोमय जैसे निस्तत्व पदार्थ में वैदिक लोग अपने मन्त्रबल पर देवत्व का प्रतिष्ठान कर यजमान का मनोरथ सिद्ध कर देते है । तब आप जैसे लोकोत्तर विद्वान् ऐसे नगण्य बालक में भी विलक्षणता ला सकते हैं, यह ध्रुव सत्य है ।

छत्रे—बाल क्या आपका......

महीधर—जी, हां ।

छत्रे—तब तो आप बड़े भाग्यशाली हैं ।

महीधर—(हाथ जोड़े) आप लोग जैसे विद्वानों के आशीर्वाद से।

छत्रे—जितना ही उसमें बुद्धि वैलक्षण्य है, उतनी ही वेशविन्यास निरपेक्षता।

महीधर—उसको न कपड़े का व्यसन है, न भोजन विशेष में ही रुचि। न मनोरञ्जन की ही लालसा। विद्यालय से आकर निवृत्त हो सन्ध्या करने के पश्चात् जलपान करता और आप जैसे विद्वानों के पास पहुँच जाता और अपनी जिज्ञासाओं का समाधान चाहता रहता है।

छत्रे—तब वह पाठ्यक्रम कैसे अभ्यस्त करता है?

महीधर—पाठ्यक्रम? पाठ्यक्रम तो विद्यालय में ही वह अध्यापक के अध्यापन के समय ही एकतानवृत्तिसे सुनता और हृदयङ्गम करता जाता है। जो एकबार अभ्यस्त कर लेता है, उसे वह कभी नहीं भूलता। घर पर तो वह उस विषय की अन्यान्य सहायक पुस्तकें ला-लाकर पढ़ता रहता है।

बर्वे—हाँ, यह उसमें अद्भुत गुण है। जिज्ञासावृत्ति उसकी जैसी ही बलवती है, वैसी ही स्मरणशक्ति भी प्रखर एवं व्यवस्थित। जब तक उसकी शङ्काओं का यथार्थ समाधान नहीं हो जाता, तब तक वह कदापि शान्त नहीं रह सकता।

महीधर—यह सब सद्गुण होते हुए उसमें एक ऐसा दुर्गुण है, जिससे मन को कभी-कभी महान् क्लेश होता है।

छत्रे—(चकित हो) वह क्या?

महीधर—यही कि उसमें दुराग्रह की मात्रा अत्यधिक है।

छत्रे—जैसे?

महीधर—जिस बात का वह निश्चय कर लेगा, उसपर वह अटल रहेगा। हाँ! यदि उसे अपनी भूल ज्ञात हुई, तब पश्चात्ताप भी करेगा और क्षमा भी माँग लेगा। अन्यथा वह अपने निश्चय से कभी विचलित नहीं हो सकता।

छत्रे—तब तो उसका यह दुराग्रह नहीं, शुभाग्रह है। एक महान् गुण है। ऐसी वृत्ति तो किसी-किसी विरला व्यक्ति में ही दृष्टिगोचर होती है। गणित में भी उसकी अपूर्व प्रतिभा है। एकबार मैंने गणित का एक प्रश्न लिखकर रखा था कि कभी अवकाश मिलने पर चिन्तन करूँगा। उसने उसे वहीं पर देखा और तुरत उसका हल उसके नीचे लिखकर चला गया। उसपर मेरे आश्चर्य की सीमा न रही।

बर्वे—गणित उसे आता है और वह उसका मुख्य एवं प्रिय विषय भी है। एकबार मैं कक्षा में गणित पढ़ा रहा था। सब लड़के अपनी स्लेट पर लिख रहे थे। जब मैंने उसे लिखने को कहा तो उसने झट उत्तर ही बोल दिया कि इसे लिखने की क्या आवश्यकता? एक बार उसे श्यामपट्ट पर हल करने को कहा तो झट मौखिक रूप से ही उसका हल कर दिया। इस समय वह अपने निश्चय पर अड़ गया है, जिससे मैं कठिनाई में पड़ गया हूँ।

महीधर—हाँ, कुछ ऐसी ही बात है।

छत्रे—भाई! ऐसे लड़के को दबाना नहीं चाहिये। नहीं तो उसके प्रखर मनोवेग पर आघात पड़ने की संभावना होती है। अच्छा (बर्वे से) तो आज्ञा मिले चलूँ।

महीधर—प्रोफेसर साहब! मैं भी आपके साथ चलता हूँ। (बर्वे से हाथ जोड़े) अच्छा, तो मुझे भी आज्ञा मिले। मैं भी चलूँ।

(महीधर पन्त का प्रो. छत्रे के साथ प्रस्थान)

वर्वे—(एकान्त में) इसी को परतन्त्रता की यमयातना कहते हैं। जिस 'बाल' को पुत्रसे भिन्न नहीं समझा! जिसकी प्रतिभा शक्ति पर मेरे विद्यालय को गर्व था। जिससे बड़ी-बड़ी आशालताएँ वर्धमान थीं। उसे अपने हाथों पृथक् करना पड़ा! अपने समक्ष निरपराध को अपराधी कहना पड़ा। क्यों? उदर दरी की पूर्ति के लिए! शासन शनि को प्रसन्न रखने के लिए। यह प्रश्न, यह जटिल समस्या मेरे ही समक्ष नहीं,

प्रत्येक शिक्षक के समक्ष है और ठीक ऐसी ही दुःसह। बाल पर ऊपर से भले ही रोष प्रकट करूँ, पर मेरा अन्तःकरण काँपता और विचलित हो उठता है। अच्छा चलूँ, अब सन्ध्या हो चली।

(प्रो० बर्वे का प्रस्थान)

(स्थान —अध्ययन कक्ष। बालगङ्गाधर चिन्तन मुद्रा में)

बाल—यह तो निश्चय है कि विद्यालय छोड़ना ही पड़ेगा और उससे मेरे अध्ययन क्रम में अवश्य बाधा आवेगी। जिस रीति से गुरु जी हिन्दुदाय भाग पढ़ाते और हिन्दु धर्मकी वैज्ञानिकता का सजीव विश्लेषण करते हैं, वैसा शिक्षक तो सौभाग्य से ही मिलेगा। जो भी हो। जितनी भी हानि हो, पर इन विदेशी दानवों के दलन एवं उपेक्षण द्वारा सम्भूत मान हानि की अपेक्षा वह हानि स्वल्प ही कही जा सकती है। और ईश्वर जो करता है वह न्याय ही करता है, उसमें मङ्गल ही निहित रहता है। वस्तुतः आज देश को विद्वत्ता की अपेक्षा स्वदेशाभिमान की आवश्यकता है, नितान्त आवश्यकता है। कोई भी जाति अपना स्वाभिमान छोड़ देने पर जीवित नहीं रह सकती, यह ध्रुव सत्य है। यदि स्वाभिमान शून्यता ही शान्ति का निमित्त कारण हो, तब पशुता या क्लीवता का निमित्त कारण क्या होगा?

(विद्यावयोवृद्ध मातुल घाणेकर जी का प्रवेश)

बाल—(झट सावधान होकर चरण स्पर्श करते हुए) प्रणाम मामाजी।

घाणेकर—चिरंजीव! वत्स! चिरञ्जीव! (दोनों यथास्थान बैठते हैं) वत्सबाल! कितनी कठिनाई से तुम्हारा नाम फर्ग्युसन कालेज में लिखा गया होगा। अध्ययन क्रम में परिवर्त्तन से जो हानि हुई सो अलग। फिर अंग्रेजों से संघर्ष करने की क्या आवश्यकता? वह हमारे देश के शासक हैं। भाग्य-विधाता हैं। फिर देशोद्धार का उत्तरदायित्व

तुम्हीं पर है? और भी तो विद्वान हैं, जो उच्च पदों पर प्रतिष्ठित होकर अपना स्वार्थ सिद्ध कर रहे हैं। फिर तुम्हें ही क्या पड़ी है कि तुम देश के लिए अपने को और अपने असहाय परिवार को सङ्कट में डालो और आन्दोलन करो। बस, परीक्षा ५, ६ महीने में होनेवाली है। एकतान होकर पढ़ो और प्रथम आओ।

बाल—(हाथ जोड़े) आप विद्यावयोवृद्ध हैं, प्रणम्य हैं। जो कहें सब क्षम्य है। अंग्रेजों को देश का भाग्य-विधाता कहना क्या आप जैसे विद्वान् के लिए शोभा की बात है। भाग्य-विधाता तो एकमात्र ईश्वर ही है। देशोद्धार का उत्तरदायित्व देश की समस्त जनता पर है। ईश्वर पर विश्वास करनेवाला परिवार या प्राणी असहाय कभी होता ही नहीं। अध्ययन तो मेरा मनोरञ्जन है, जो यावज्जीवन चलेगा। रही परीक्षा! सो भी प्राणान्त तक चला चलेगी। उसके रूपान्तर में अवश्य भिन्नता होगी।

घाणेकर—यह सब तो ठीक ही है। पर, तुम्हें, देशकाल का भी विचार करना चाहिये।

बाल—(हाथ जोड़े) अवश्य। तो देश हमारा है, उसके अन्न, जल, वायु, मिट्टी से यह शरीर निष्पन्न हुआ है, फिर उसके उद्धार के लिए भी तो कुछ हमारा कर्तव्य होता है। रहा काल? वह तो बनाने से बनता है। यदि हमारा आचार-विचार, कर्म-धर्म, नेम-नियम विधि-विहित है, तो निश्चय ही काल को हमारा अनुगमन करना पड़ेगा।

घाणेकर—बाल! घर की स्थिति भी तो देखो। घर का आधार-स्तम्भ अब तुम्हीं को बनना होगा। चाचा महीधर भी कुछ ऐसे ही निरपेक्ष व्यक्ति ठहरे। बस, परिवार का भविष्य अब तुम्हारे ही भविष्णु एवं सहिष्णु कन्धे की प्रतीक्षा कर रहा है।

बाल—मामा जी! आप हमारे पूज्य हैं, जो कहें शिरोधार्य है। आपकी आज्ञा की अवहेलना देवता का अपमान करना होगा।

पिता जी ने मुझे गीता पढ़ाई है, तदनुसार विश्व का भाग्य-विधाता भगवान् है। वह साधु सज्जनों की रक्षा करता है। फिर चिन्ता क्यों? पिता जी ने कहा था कि हम लोग ब्राह्मण हैं। ब्राह्मण को अर्थार्जन की अपेक्षा 'आचारः परमो धर्मः' के अनुसार आचार निष्ठता उपार्जन अधिक श्रेयस्कर होता है और अभी तो हमारा यह अध्ययनकाल है।

घाणेकर—यह अध्ययनकाल ही तो निर्माणकाल होता है, बेटा! पारिवारिक भार वहन की योग्यता प्राप्त करने का तो यही अवसर है। इस समय जैसी प्रकृति, जैसी प्रवृत्ति होती है, वैसा ही तो मनुष्य का निर्माण होता है। इस समय तो प्रकृति में कोमलता सहिष्णुता लाने का अभ्यास करना चाहिये।

बाल—मामाजी! सहिष्णुता का अर्थ क्लीवता तो नहीं न! सहिष्णुता के लिए शक्ति चाहिये। शक्ति के बिना सहिष्णुता कैसी? इस अवस्था में सहिष्णुता के साथ-साथ शक्ति भी प्राप्त करनी चाहिये। शक्त ही सहिष्णु हो सकता है। अशक्त की सहनशीलता तो सहिष्णुता नहीं, विडम्बना मात्र होती है।

घाणेकर—मुझे जो कहना था कह दिया। करना तुम्हारे हाथ में है। तुम स्वयं विद्वान् एवं बुद्धिमान् हो। अब तो चलता हूँ।

(आगरकर का प्रवेश)

आगरकर—(घाणेकर जी का चरणस्पर्श कर प्रणाम करते हैं)

घाणेकर—शुभाशीर्वाद आगरकर जी बैठिये, मैं चलता हूँ।

(घाणेकर जी चलते हैं, बाल चरणस्पर्श कर प्रणाम करते हैं)

आगरकर—(प्रसन्न मुद्रा में) हो गया। मोरेश्वर महाशय ने तो स्वीकार कर लिया।

बाल—उन्हें यह घटना पहिले से विदित थी कि नहीं?

आगरकर—विदित थी। मेरे कहने से पूर्व ही उन्हें यह घटना

विदित हो गयी थी। अब तो नगर-भर में यह घटना व्याप्त हो गयी है। सब लोग आपकी इस दृढ़ता पर विस्मित एवं चकित हैं।

बाल—तब !

आगरकर—अब, तब क्या ? चलिए, नाम लिखाइए।

(सप्रे का प्रवेश)

सप्रे—(प्रवेशकर दोनों हाथ उठाकर) दोनों कर्णधारों को साधुवाद !

आगरकर—यह साधुवाद क्यों ?

सप्रे—बाल को इसलिए कि इन्होंने गोरे सैनिकों से संघर्ष कर भारतीयों के नैतिक बल के साथ साहस का परिचय दिया है। और (आगरकर की ओर संकेत कर) आपको तो इसलिए कि शासन द्वारा निष्कासित बाल का आपने फर्ग्युसन कालेज में प्रवेश करा भारतीय हृदय के सहानुभूति एवं साहसातिरेक का परिचय दिया है।

बाल—भाई सप्रे ! इसके लिए हम लोग धन्यवादाँह नहीं हैं। वस्तुतः धन्यवाद के सत्पात्र तो फर्ग्युसन कालेज और उसके प्रधानाचार्य श्री मोरेश्वर महाशय हैं, जिन्होंने शासन की चिन्ता न कर अंग्रेजी शासन के विद्रोही को अपने कालेज में आश्रय दिया है।

सप्रे—इसमें क्या सन्देह ! सिटी कालेज से आपका निष्कासन और फर्ग्युसन कालेज में आपका प्रवेश, यह दोनों उल्लेखनीय घटनाएँ हैं।

आगरकर—और क्या ?

सप्रे—(घड़ी देखकर) ६ बज गये।

आगरकर—तब तो चलना ही चाहिये। देर नहीं करनी चाहिये।

बाल—(भीतर जाकर कुछ कागज हाथ में लिए) तो चला जाय।

(बात करते तीनों शनैः-शनैः चलने लगते हैं)

सप्रे—भाई मोरेश्वर महाशय की दृढ़ता पर विस्मित हो जाना पड़ता है।

आगरकर—वह बड़े ही उदात्त एवं राष्ट्रिय विचार के व्यक्ति हैं। वेतन के अतिरिक्त उनकी अन्य कोई आय नहीं। वेतन में से भी वह असहाय छात्रों की आर्थिक सहायता करते रहते हैं। मैं तो उन्हीं की कृपा से पढ़ रहा हूँ। अन्यथा मेरे जैसे असहाय छात्र का अध्ययन असम्भव था।

बाल—वस्तुतः वे बड़े उदारचेता हैं। उनकी स्तुति हमारे कालेज के अध्यापक भी करते हैं।

आगरकर—वे बड़े विलक्षण हैं। वह अपनी स्तुति सुनते ही नहीं। वे प्रयोजन की ही बात करते और सुनते हैं। भगवान् को अशरण शरण अवश्य कहा गया है। किन्तु आज असहाय छात्रों के सहायक एवं अशरण शरण तो वस्तुतः मोरेश्वर महाशय ही हैं।

सप्रे—क्या कहना है।

आगरकर—भाई सप्रे! इसी प्रकार जब मैं अपनी गतवर्ष की स्थिति पर विचार करता हूँ तो सचमुच रोमाञ्च हो उठता है। यहाँ से डेढ़ सौ मील दूर रत्नागिरि पैदल ही चला। कितना बीहड़! कितना विकट वह वन्य पथ! और कितना भीषण उन वन्य पशुओं का चीत्कार! किसी-किसी प्रकार चाचाजी के पास पहुँचा। उन्हें देखकर मुझे जान में जान आई। पर, मुझे देखकर उनके जैसे प्राण निकल गये। ऐसा उनकी भाव-भङ्गिमा से जान पड़ा।

बाल—ऐसा?

आगरकर—ऐसा पूछते हैं! मेरे मुँह से 'अध्ययन का प्रबन्ध' वाक्य पूरा निकल भी नहीं सका था कि बीच में ही बात काटकर नौकरी करने का प्रस्ताव उन्होंने मेरे सामने रख दिया। मैं अवाक् रह गया। मेरी आशालता पर जैसे तुषारपात हो गया। प्रातः होते ही उठा और बिना पूछे ही उसी भीषण वन्य-पथ से प्राणों को हथेली पर रखकर चल पड़ा। किसी-किसी प्रकार पूना पहुँचा। बड़े साहस के

साथ अपने प्रताड़ित हृदय को (याच्ञामोघा वरमधि गुणे) का विचार कर पुनः एकबार सन्नद्ध किया।

सप्रे—अच्छा !

आगरकर—और मोरेश्वर महाशय की सेवा में उपस्थित हुआ। जैसा मैंने सुना था विष्णुमोरेश्वर महाशय वैसे ही मिले। वह झट बोल उठे 'भगवान् जैसा सहायक तुम्हारे साथ! और तुम अपने को असहाय कहते हो। अध्यवसायी पुरुषार्थी कभी असहाय होता ही नहीं। उसका सहायक तो भगवान् होता है। हाँ, भगवान् पर अटल श्रद्धा और विश्वास रखकर विद्याव्रती बनो। साध्य की साधना में लग जाओ। साधन की चिन्ता मत करो।' की शब्द सुधा लहरी से पावसघन की तरह जैसे मेरे प्रतप्त हृदय को उन्होंने शीतल कर दिया।

बाल—आपके लिए तो वह साक्षात् भगवान् हो गये।

आगरकर—हमारे लिये ही क्यों? हमारे जैसे न जाने कितनों के वे साक्षात् भगवान् बने बैठे हैं। गोपालराव डावरे, वझे, पराडकर प्रभृति अनेक उनकी ही दानवीरता से पढ़ रहे हैं। वे छात्रों के लिए जैसे ही कृपालु कोमल हैं वैसे ही शासनाधिकारियों के लिए कर्कश कठोर! (वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि) भवभूति की सूक्ति श्री मोरेश्वर महाशय के ही व्यवहार में व्यक्त होती है। इसी से शासन की शनिदृष्टि इनपर बराबर बनी रहती है और वह इससे तनिक भी विचलित नहीं होते।

सप्रे—सुनते हैं पढ़ाते समय भी शासन की तीव्र आलोचना किया करते हैं।

आगरकर—क्या कहना है? एक तो इतिहास पढ़ाने की उनकी शैली ही अपूर्व! उसपर ब्रिटिश शासन की छलछद्मपूर्ण नीति की जब सतर्क आलोचना करने लगते हैं, उस समय उनका अगाध पाण्डित्य

और अपूर्व स्वदेशानुराग किसे नहीं प्रभावित करता। प्रसुप्त धमनियों में भी देश-भक्ति की लहर उछलने लगती है।

बाल—ऐसे शिक्षक सौभाग्य से ही मिलते हैं।

आगरकर—सौभाग्य से ही नहीं, कहिये कि चिरसञ्चितप्राक्तन पुण्य से मिलते हैं।

सप्रे—सचमुच, ऐसे शिक्षक का नहीं, प्रधानाचार्यका मिलना छात्रों के प्राक्तन पुण्य का ही फल है।

आगरकर—और कालेजों की बात जाने दीजिए। हमारे ही कालेज में, जहाँ और अध्यापक न जाने किस प्रकार ब्रिटिश शासन की स्तुति करने में अपना कर्तव्य पालन समझते हैं, शासकों की चाटुकारिता करते रहते हैं, वहीं मोरेश्वर महाशय वर्तमान शासन के विरुद्ध सिंह गर्ज्जन करते रहते हैं। यह नहीं कि कक्षा में ही, सार्वजनिक सभा में भी प्रसङ्ग आने पर ब्रिटिश शासन की आलोचना किये बिना शान्त नहीं रह सकते।

(गोपाल राव डावरे का प्रवेश)

डावरे—(प्रवेशकर) नमस्कार बाल जी !

बाल—नमस्कार डावरे जी ! नमस्कार !

डावरे—अहा ! आगरकर जी ! नमस्कार ! नमस्कार।

आगरकर—नमस्कार डावरे जी ! नमस्कार। अच्छे मिले।

डावरे—हाँ ! एक ही साथ दोनों के दर्शन से आज की यात्रा अच्छी जान पड़ती है।

बाल—हमलोग भी आपका स्मरण कर ही रहे थे।

डावरे—क्यों नहीं ? कहिये क्या हो रहा है ? अब तो परीक्षा के कुल ६ महीने रह गये।

बाल—पढ़ने के लिए तो चार ही महीने। मैं तो विद्यालय से...

डावरे—(विस्मित हो) क्या कहा ? विद्यालय से ? विद्यालय से क्यों ?

आगरकर—अब कुछ नहीं ।

डावरे—अब नहीं का अर्थ होता है पहिले कुछ था ।

आगरकर—हाँ, सिटी विद्यालय से बर्वे जी ने हटा दिया था ।

डावरे—तो ?

आगरकर—तो क्या ? मेरे निवेदन पर श्री मोरेश्वर महाशय ने अपने कालेज में सहर्ष इन्हें रख लिया ।

डावरे—हाँ, वह तो उग्र राष्ट्रिय विचार के हैं । बाल की राष्ट्रियता से तो वह प्रभावित भी होंगे ।

आगरकर—और क्या ? बहुत प्रभावित हैं । हम दोनों से बहुत प्रसन्न रहते हैं, यह बात और छात्रों को अच्छी नहीं लगती । कुछ अध्यापक भी हम लोगों से इसी से अन्तर्दाह रखते हैं ।

बाल—भाई ! कोई अन्तर्दाह रखे या बाह्यदाह । मेरे विचार और सिद्धान्त में तनिक भी परिवर्तन नहीं हो सकता । मैं अभी जो पढ़ने की सोच रहा हूँ, वह इसलिए नहीं कि प्रचुर वेतनभोगी बनकर आनन्द का जीवन व्यतीत करूँगा, प्रत्युत इसलिए कि एक दो वर्ष और अध्ययन करने की अभी मेरी अवस्था है ।

आगरकर—भाई बाल ! अब हम लोग चलें । कल से तो साथ ही पढ़ना है ।

डावरे—और क्या ?

(आगरकर के साथ डावरे सप्रे जाते और श्री जोशी प्रवेश करते हैं । बाल चरण स्पर्शपूर्वक प्रणाम करते हैं)

बाल—(आगरकर से) आप जा रहे हैं ?

आगरकर—नहीं, नहीं, मैं अभी आ रहा हूँ । (बाहर जाते हैं)

जोशी—प्रिय बाल ! विद्यालय से तुम्हारा हटना सुनकर मुझे बड़ा क्लेश हुआ।

बाल—क्लेश की तो कोई बात नहीं। जीवन में तो ऐसा सङ्कट आता ही रहता है। पतन के बिना उत्थान की स्थिति कहाँ। उत्थान पतन तो मानव धर्म की दो भुजाएँ ही हैं। प्रकृति की इस अबाध गति का कोई अवरोध कर नहीं सकता और जब कि शासन ही विदेशी है।

जोशी—सही है। अच्छा ! कोई चिन्ता नहीं। तुम योग्य पिता के योग्य पुत्र हो। पिता का समस्त संस्कार तुममें आ गया है। यह तुम्हारे परिवार के लिए ही नहीं, हमारे समाज के लिए भी गर्व की बात है।

बाल—(हाथ जोड़े) यह सब आप जैसे बड़ों के आशीर्वाद का ही फल हो सकता है। यदि मुझमें ये गुण न भी हों, तो भी आप जैसे बड़ों की शुभकामनाएँ मुझमें आधान कर सकती हैं।

जोशी—तुम स्वयं योग्य हो। हाँ, इस बार भी सर्वप्रथम नहीं तो प्रथम श्रेणी तो आ ही जावेगी। तब न्यायाधीश ! नहीं तो तृतीय श्रेणी आने पर भी कम से कम अध्यापक तो हो ही जावोगे।

बाल—(क्षुब्ध सा) क्या कहा ? आप बड़े हैं, वन्दनीय है, जो चाहें कहें, पर यह मैं सुनने को तैयार नहीं कि अध्यापक जैसा पवित्र पद तृतीय श्रेणी जैसे अयोग्य के लिए हो। जो अध्यापक अपने ज्ञान-दान से न्यायाधीश, एवं जिलाधीश उत्पन्न करे, उस पद पर अयोग्य का प्रतिष्ठान ? यह सुनना भी मेरे जैसे विद्यार्थी के लिए पातक एवं प्रायश्चित की बात होगी।

जोशी—प्रिय बाल ! अभी तुम बच्चे हो, जब तुम्हें देश-काल की स्थिति का अनुभव ज्ञान होगा, तब तुम्हें इसका पता होगा कि भारत में प्रबन्ध, रक्षण पदों पर प्रथम श्रेणी के योग्य व्यक्ति एवं शिक्षण जैसे उत्पादक पद पर तृतीय श्रेणी के निम्नस्तर के व्यक्ति को नियुक्त करना

आज की ब्रिटिश शासन नीति है। और आज पता पाकर भी तुम ब्रिटिश शासन का कर ही क्या सकते हो?

बाल—मैं कर क्यों नहीं सकता जोशी जी? मैं तो उस नीति एवं उस नीति के निर्माता शासन के उन्मूलन का ही व्रत ले चुका हूँ। और यदि मेरी अच्छी श्रेणी आयी तो शिक्षण पद पर ही रहकर आदर्श भारतीय शिक्षा का संघटन करूँगा। भला! यह कितना अनुचित एवं असह्य है, जोशी जी! जो शिक्षक कलेक्टर डिप्टीकलेक्टर पैदा करे, उस गुरुत्व पद पर तृतीय श्रेणी का निम्नस्तर व्यक्ति! यह भी कोई नीति है? इस दुर्नीति की कोई सीमा है?

(सप्रे के साथ आगरकर का प्रवेश)

आगरकर—(यथास्थान बैठकर) किस दुर्नीति की सीमा का निर्धारण हो रहा है?

बाल—ब्रिटिश शासन के अतिरिक्त दूसरा कौन शासन है? जिसकी नीति की आलोचना हो सकती है?

आगरकर—(जोशीजी से) आज हमारे समाज का निर्माण ही ऐसा दुर्बल हो गया है, जिससे हम अपनी गुरुता का विचार ही नहीं कर पाते, नहीं तो आज शिक्षा और उसके शिक्षक की उपेक्षा नहीं होती।

जोशी—किन्तु जब समाज का निर्माण ही ऐसा दुर्बल एवं दुष्कृत हुआ है और होता जा रहा है, तब अकेला हम या हमारे जैसे दो-चार कर ही क्या सकते हैं? एक चना तो भाँड़ नहीं फोड़ता?

बाल—कर क्यों नहीं सकते हैं? करने के लिए पहिले अन्तःकरण में विचार तो जागरित होना चाहिये। जिसके द्वारा ऐसे समाज का निर्माण हो रहा है, उसका ही उन्मूलन श्रेयस्कर है और उसे एक व्यक्ति भी कर सकता है, यदि उसके विचार में दृढ़ता एवं कर्मठता हो और उसकी दृष्टि व्यक्तिगत नहीं, समष्टिगत हित की ओर हो।

जोशी—प्रिय बाल! मैं अब चलता हूँ और यह कह कर चलता

हूँ कि तुम हमारे अभिन्न हृदय प्रिय गङ्गाधर जी के भविष्णु चिरजीवी हो। परिवार का गुरुतर भार अब तुम्हारे ही कोमल कन्धे पर आने वाला है। उसके पालन-पोषण में राष्ट्र रक्षण का फल है। व्यष्टि ही तो समष्टि का उपादान कारण होता है। फिर उस व्यष्टि की स्वस्थता पर ही समष्टि की स्वस्थता निर्भर करती है, बाल!

बाल—जोशी जी! आप हमारे पितृ तुल्य श्रद्धेय हैं। यह तो सर्वथा सत्य है। किन्तु, कभी-कभी समष्टि की स्वस्थता व्यष्टि के बलिदान से ही निष्पन्न होती है। जब हुताशन कुण्ड में हवनीय द्रव्य की आहुति होती है, तभी तपनतप्त वसुन्धरा की तृप्ति के लिए गगन में 'सहस्रगुण-मुत्स्रष्टुं' जैसे जलदजाल की सृष्टि होती है, जिससे धरणिका सुखद अञ्चल सुजला, सुफला बनकर अमरावती की सुषमा का चुम्बन करने लगता है। आज भारत के समक्ष यही समस्या! यही प्रश्न है!! जिससे हमें जीवन मरण में से एक का वरण करना है। या तो भारतवासी जीवितों के साथ जीवित होकर संसार में रहेंगे या तो सदा के लिए अब मर मिटेंगे, मर मिटेंगे, जोशी जी!

जोशी—बाल! मुझे जो कुछ कहना था, वह कह चुका। करना तुम्हारे हाथ है। अब तुम स्वयं सोच सकते हो अपना कर्त्तव्य।

बाल—मुझे आपका आशीर्वाद चाहिये। जहाँ मैं नहीं सोच सकता! मेरी बुद्धि काम नहीं कर सकती! वहाँ तो आपकी ही सहायता अपेक्षित होगी। तदर्थ मेरे लिए आपका दयाद्वार खुला रहना चाहिये।

जोशी—अवश्य! अच्छा, तो अब मैं चलता हूँ। ईश्वर तुम्हें सदा सफल एवं सर्वप्रथम रखें।

बाल—(हाथ जोड़े) बड़ी कृपा! (जोशीजी चलते और बाल चरण स्पर्श करते हैं)

आगरकर—यह बड़ी विषम स्थिति है। समाज के वयोवृद्ध जनों के हृदय में सभी सद्गुण होते हुए भी देश के प्रति यह दुर्भावना क्यों?

बाल—इसी लिए कि यहाँ का शासन, वह ब्रिटिश शासन है, जिसकी नीति में अपने शासितों के हृदय को विकृत एवं विपरीत बनाने का मूलतत्व निहित है। फलतः जहाँ हमारे पूर्वजों का जीवन सर्वस्व धर्म के लिए ही, धर्मातिरिक्त जिनके जीवन में कुछ था ही नहीं, वहाँ हम आज अर्थ के लिए ही जीते और अर्थ में ही जीवन समझते हैं। जहाँ देशधर्म के लिए उनका बलिदान हुआ है, वहाँ हम अपने लिए देशधर्म की तिलाञ्जलि कर रहे हैं। इससे अधिक हमारा अधःपात और क्या हो सकता है ?

सप्रे—यह तो अक्षरशः सत्य है।

बाल—तो हमारी असत्य बात कौन सी है ? स्मरण रखो भाई सप्रे ! मैं परिहास में भी असत्य नहीं बोलता और न किसी का असत्य व्यवहार सहन कर सकता या देख सकता हूँ।

आगरकर—(सप्रे की ओर) उस दिन उन गोरे सैनिकों के साथ भिड़ जाने में बाल का यही स्वभाव तो कारण हुआ ! उनकी उद्दण्डता तो दूसरे के साथ हुई। यह अपने इसी स्वभाव के कारण उन गोरों से संघर्ष में उतर पड़े।

सप्रे—और क्या ?

बाल—उस कालेज से हटने का मुझे हार्दिक दुःख है। वहाँ के अध्यापक श्री वर्वे जैसे गुरु का मिलना कठिन है। किन्तु मुझे अपार सन्तोष है कि मैंने उचित किया है। उस दिन गोरे सैनिक को भी ज्ञात हो गया होगा कि भारतीयों में भी परस्पर साहाय्य सहानुभूति की उत्कट भावना है एवं उनके आत्मसम्मान एवं स्वाभिमान को कोई ठेस पहुँचा कर शान्ति से रह नहीं सकता। हाँ, मेरे अध्ययन-क्रम का प्रवाह रह-रहकर टूट जाता है, किन्तु श्री मोरेश्वर महाशय जैसे उदात्त राष्ट्रिय विचार के प्रधानाचार्य की छाया में उनकी सहज कृपा से वह जुट जावेगा।

आगरकर— अवश्य ?

सप्रे—अपने परिश्रम एवं प्रतिभा के बल से तो आप उसे जोड़ लिया करते ही हैं, उसपर प्रधानाचार्य की कृपादृष्टि उसमें और सहायक एवं साधक होगी।

आगरकर—(घड़ी देखकर) १० बज गये। अब हम लोग चलते हैं। आप अपना अध्ययन-क्रम पूर्ववत् चलाइए। परीक्षोपरान्त कर्मठवृत्ति ग्रहण कर हमलोग डटकर लोक सेवा में लग जावेंगे।

सप्रे—हाँ, ६ महीने का विलम्ब है।

बाल—तब तक मैं शनैः शनैः प्रस्तावित शिक्षाविधि का प्रयोग भी कर लेता हूँ।

(दोनों चलते हैं, बाल भी थोड़ी दूर तक साथ जाकर पुनः लौटते हैं)

बाल—(एकान्त में) मामाजी की बात भी अपने स्थान पर ठीक ही है। वह अनुचित एवं असङ्गत नहीं है। सगे सम्बन्धियों की ममता ऐसा कहने या करने के लिए प्रेरित करती ही है। किन्तु, मैं ब्राह्मण हूँ। मेरे पितृचरण का जागरुक ब्राह्मण्य मुझे उत्तराधिकार में मिला है और उनका आदेश भी है 'ब्राह्मणस्य तु देहोऽयं क्षुद्रकामाय नेष्यते।' फिर जब ब्राह्मण का शरीर ही लोकहित के लिए है। तब तो मुझे लोकहित के सत्पथ पर ही चलना है।

द्वितीय अङ्क

(बाहर से) महाराष्ट्र का प्रभाकर ! वत्स बालगङ्गाधर !!

बाल—(भीतर से निकल कर) ऐं ! महाशय गार्गे जी ! (चरण स्पर्श कर) मैं सोच ही रहा था दर्शन करने का !

शास्त्री—यह समझ कर ही मैं आया हूँ। वत्स बाल ! तुम महाराष्ट्र के ही नहीं भारत के उद्धारक बनोगे।

बाल—आप जैसे विद्यावयोवृद्धों की वाणी से ही।

शास्त्री—तुम्हारी कुण्डली की ग्रहस्थिति बहुत ही अपूर्व है। इस समय से तो उत्तरोत्तर स्थिति उन्नत ही होती जावेगी। इधर की स्थिति बड़ी ही उच्चावच रही। सारांश यह कि तुम शीघ्र ही भारतवसुन्धरा के देदीप्यमान तिलक बनकर ख्याति प्राप्त करोगे।

बाल—(हाथ जोड़े) यह कदाचित् आपके शुभाशीर्वाद से हो सकता है, मुझमें वह शक्ति कहाँ ? हाँ, मैं देशसेवा के लिए अपना शरीर तक लगा देने का सङ्कल्प कर चुका हूँ।

शास्त्री—वत्स बाल ! तुम तो जानते ही हो कि तुम्हारे पिता हमारे सहपाठी थे। मैं उनकी धर्मनिष्ठा से प्रभावित था। वह विद्यावैभव में जैसे सहपाठियों के अग्रणी रहे, वैसे ही धर्माचरण में भी। वह कहा करते थे कि मुझे लड़का होगा तो मैं उसे सावधान ब्राह्मण बनाऊँगा और उसको धर्म का सच्चा सेवक। आज मुक्तात्मा पण्डित गङ्गाधर पन्त का भौतिक शरीर यहाँ भले ही न रहा, पर तुम 'आत्मा वै जायते पुत्रः' के अनुसार उनका यशः शरीर बनकर विराजमान हो। उनका प्रिय स्वप्न तुम निश्चय ही सफल करोगे, तुम्हारी ग्रहस्थिति कह रही है और मैं तुम्हें आशीर्वाद दे रहा हूँ।

बाल—जहाँ भीतर से बाहर तक देश में धर्मविरुद्ध ही भीषण तत्त्व वर्तमान हैं, वहाँ......

शास्त्री (बीच में बात काट कर) प्रबल प्रभञ्जन के आघात से जलदपटल जैसे विच्छिन्न एवं विलुप्त हो जाता है, वैसे ही तुम्हारे उच्च ग्रहों की उग्र गतिविधि से यह सभी हवा हो जावेंगे, प्रिय बाल !

बाल—(हाथ जोड़े) शासन के विरुद्ध खड़ा होने की यह आप की व्योमवाणी समझूँ ?

शास्त्री—मेरी वाणी क्या, ग्रह स्थिति ही ऐसी है।

बाल—तो यह आपकी भविष्यवाणी शिरोधार्य ! पितृदेव के श्रद्धेय सहपाठी एवं समानधर्मा होने के कारण मैं आपको भी धर्मपिता ही मानता हूँ। आपके सम्मुख मैं भीष्मप्रतिज्ञा करता हूँ कि इस देश धर्म घातक शासन का उन्मूलन करने के लिए मैं सर्वस्व लगा दूँगा।

शास्त्री—तुम न भी लगाना चाहोगे तो भी ग्रहस्थिति ही ऐसी है कि तुम्हें लगाना ही पड़ेगा। इस संवत् के समाप्त होते ही ऐसी स्थिति आने की प्रबल संभावना है, बाल !

बाल—तब तक हमारा 'लॉ' भी हो गया रहेगा।

शास्त्री—सब होगा। हाँ, किसी देवता को अपना इष्टदेव मानकर थोड़ी उपासना भी करते जाओ। इससे बड़ा बल मिलता है।

(कान में)

बाल—(हाथ जोड़कर) अवश्य। अब तक थोड़ी-थोड़ी उपासना करता रहा, आज से उसकी अधिक मात्रा करने में लग जाऊँगा।

शास्त्री—फिर तो क्या पूछना ? राणाप्रताप, शिवाजी जैसे महापुरुष देवाराधन के बल पर ही इतने बढ़े।

बाल—ऐसा ?

शास्त्री—और क्या ? देवबल के सामने मानवबल क्या है ? संसार

के समस्त महापुरुषों के पुरुषार्थ के भीतर देवबल ही उत्प्रेरक रहा। ईश्वर की कृपा से तुम्हें उन्हीं महापुरुषों की श्रेणी प्राप्त होगी।

बाल—आप जैसे तपोनिष्ठ की वाणी में भी वही देवबल है, जिससे अणु से भी अणुतम महत्तम बन जाता है।

शास्त्री—यह तुम्हारी उदात्तता का परिचय है। अच्छा, तो अब चलूँ।

(गार्गे शास्त्री का प्रस्थान, मार्ग में आगरकर डावरे की भेंट)

डावरे—अहा ! शास्त्री जी ? (दोनों का गद्-गद् कण्ठ से चरण स्पर्शपूर्वक नमस्कार और शास्त्री जी का आशीर्वाद)

आगरकर—(हाथ जोड़े) इधर कहाँ से शुभागमन हो रहा है ?

शास्त्री—जोशी जी का दर्शन करके चि. बाल को देखने चला आया। इधर बहुत दिनों से उन्हें देखा नहीं था।

आगरकर—बड़ी कृपा ! उसके पिता के स्थान पर तो आप हैं ही। अच्छा, एक हमारी जिज्ञासा है।

शास्त्री—हाँ, हाँ, कहिये।

आगरकर—बाल की कुण्डली तो आपने देखी होगी।

शास्त्री—अवश्य। उसमें आप क्या जानना चाहते हैं ?

आगरकर—यही कि उसकी ग्रहस्थिति कैसी है ?

शास्त्री—प्रायः सभी ग्रह उसके उच्च के हैं, राजयोग के हैं। वह जनमत से महाराष्ट्र का वस्तुतः तिलक होगा। और यह लक्षण उसमें जन्मतः दृष्टिगोचर होना चाहिये।

डावरे—अक्षरशः सत्य !

आगरकर—पढ़ने-लिखने में तो वह सर्वप्रथम है ही, आचार-विचार में भी विलक्षण है। बाल के सहपाठियों में अनेक राजकुमार भी रहते हैं पर, उनके विलास-विचार का, भोजन-छाजन का विन्दु मात्र भी प्रभाव आज तक बाल पर नहीं पड़ सका। अपनी परम्परा-

नुसार अपने हाथ से भोजन बनाना और पाना, बाल की अपनी विशेषता है।

शास्त्री—(प्रसन्न हो) ऐसा ?

आगरकर—अपना सारा कार्य बाल अपने हाथों करते हैं। वह कहते हैं कि आज के संसार का सारा कार्य, सारा प्रयत्न तो भोजन के लिए ही हो रहा है, पर उसका भोजन परतन्त्र ! फिर वह स्वतन्त्र कैसे ? और कहाँ उसे स्वाधीनता का सुख ?

डावरे—न जाने बाल को इतना समय मिल कैसे जाता है ?

आगरकर—'कैसे मिल जाता है ?' यह क्या कहते हो ? वह कक्षा का कार्य कक्षा में ही कर लेता है। प्रातः ४ बजे से १० बजे तक के उसके समय का व्यवस्थित विभाजन है। एक मिनट भी व्यर्थ नहीं। प्रातः एक घंटा व्यायाम में लगता है। जो कार्य जिस समय का है, वह कार्य उसी समय में होगा। 'कल' के लिए तो किसी कार्य को टालना बाल जानते ही नहीं। सारा कार्य करने पर भी उनके समय की बचत।

डावरे—इसी से तो जहाँ हम लोगों को पाठ के अभ्यास तक के लिए पर्याप्त समय नहीं मिलता ! समयाभाव का रोना रहता है, वहाँ बाल अपना सारा कार्य करके अवशिष्ट समय के लिए सदा कार्य का ही अभाव कहते रहते हैं।

शास्त्री—इसी से तो 'बाल' बालक होकर भी ज्ञानवृद्ध जैसा बोलता, सोचता और करता है। ईश्वर की कृपा से वह शीघ्र ही लोकमान्य बनकर अपने देश का ही नहीं, राष्ट्र का भी ज्ञान-गौरव-मानवर्धन होगा।

आगरकर—ईश्वर आपकी वाणी सफल करेगा। वह वस्तुतः लोक-मान्य होगा।

[स्थान—पूना, व्यायामशाला में बाल व्यायाम में, द्वार पर श्री आगरकर, सप्रे, एवं डावरे का प्रवेश]

डावरे (बाहर से) बाल जी ? बाल जी हैं ?

आगरकर—बाल जी नहीं, लोकमान्य जी कहिये।

बाल—(भीतर से) बाल है, लोकमान्य तो नहीं हैं ?

डावरे—बाल बाल को लोकमान्य कैसे समझ सकता है ?

बाल—जो बाल को नहीं समझा सकता, उसकी वृद्धता कैसी ?

आगरकर—और यदि बाल समझ कर भी न समझने जैसा दिखाता हो तो वृद्धता का क्या दोष ?

बाल—(चादर ओढ़ते निकल कर) आगरकर जी ? नमस्कार ! नमस्कार !

आगरकर—धन्यवाद ! साधुवाद !! एक की ओर से नहीं, हम सब की ओर से।

बाल—यह साधुवादकों की टोली प्रातः काल ही एकत्र हो गयी ?

डावरे—और क्या ?

बाल—क्या बात है ?

आगरकर—प्रथम श्रेणी के लिए आपको धन्यवाद धन्यवाद क्या ? धन्यवाद तो उसे दिया जाता है, जिसकी श्रेणी अनिश्चित रहती है। आपकी प्रथम श्रेणी तो निश्चित थी।

बाल—भाई आगरकर जी ! आज की परीक्षा में श्रेणी का महत्व ही क्या ? सौ में ३३ अङ्क या ७०, ७५ अङ्क प्राप्त करने से ही जब श्रेणी बनती है, तो मेरी दृष्टि में उसका कोई महत्व नहीं। हाँ, उत्तीर्णता के लिए शतप्रतिशत अङ्कोपलब्धि की अपेक्षा रखने वाली परीक्षा-प्रणाली का कुछ महत्व हो सकता है। ईश्वर की कृपा से भारत में उसी परीक्षाप्रणाली का पुनः प्रतिष्ठापन करना है। आज की परीक्षा श्रेणी से ज्ञानगरिमा का मूल्याङ्कन नहीं हो पाता। और फिर श्रेणी के लिए वह लालायित हो ! जिसे किसी पदमान की आकांक्षा हो। मुझे तो पदमान की लिप्सा ही नहीं। मेरे जीवन का चरम लक्ष्य तो

लोकसेवा है। हाँ, आज के शुभ दिवस को धन्यवाद देना है, जिसने पुस्तक-परीक्षा समाप्त कर मुझे लोकसेवा करने का सुयोग दिया है।

डावरे—ब्राह्मण को लोकसेवा का अधिकार ?

बाल—क्या ? ब्राह्मण की लोक सेवावृत्ति में आपको सन्देह है ?

आगरकर—क्यों नहीं ?

बाल—नहीं ! आगरकर जी, नहीं ! लोक सेवा का अधिकार तो अन्त्यजबन्धुओं को है ही, पर यथार्थ सेवा आज ब्राह्मण ही कर सकता है।

डावरे—तो लोक सेवा में ब्राह्मण और अन्त्यज दोनों समानधर्मा हैं ?

बाल—और क्या ? हमारे वर्ण-विभाग की वैज्ञानिक भूमिका अपूर्व एवं लोकोत्तर है, उसमें उच्चावचता नहीं, भ्रातृत्व जैसा स्नेह सम्बन्ध है। अग्रज (ब्राह्मण) और अन्त्यज (हरिजन) दोनों शास्त्रतः भूसम्पत्ति शून्य हैं। ब्राह्मण अपने ज्ञान योग से लोक सेवा करता था और अन्त्यज अपने शरीर योग से। तब विघ्न-बाधाओं से निश्चिन्त क्षत्रिय लोक-रक्षण में और वैश्य अन्नधन के उपार्जन में अपना सर्वस्व लगाकर हिन्दु जाति को जीवित रखने का पुण्य प्राप्त करता था। पिता जी ने मरते समय मुझे ब्राह्मण बनकर ही रहने का उपदेश दिया था।

सप्रे—पर आज का समाज तो ऐसे ब्राह्मण का उपालम्भ करता है।

बाल—इसी से तो देश पराधीन हुआ सप्रे जी ! स्मरण रहे जब तक भारत में उस ब्राह्मण्य का पुनः प्रतिष्ठान नहीं होता, तब तक भारत की पराधीनता की यमयातना दूर नहीं होती। हमारा ब्राह्मण्य तो लोक सेवा की आधार शिला पर ही प्रतिष्ठित है। आज इसमें विपर्यय हो गया है, इसी से आज हमारा देश विपरीत दिशा की ओर चला जा रहा है।

आगरकर—अब यह विपर्यय रुक नहीं सकता।

बाल—ऐसा तो नहीं। कठिन अवश्य है। हाँ, 'यत्ने कृते यदि न

सिध्यति' तब क्या अपराध ? और फिर भगवान् श्रीकृष्ण के 'कर्मण्ये-वाधिकारस्ते' वाक्यानुसार प्रयत्न करना तो हमारा कर्त्तव्य ही है।

सप्रे- समय और शक्ति की आधारशिला पर ही कर्त्तव्य का प्रतिष्ठान श्रेयस्कर होता है।

बाल—भाई सप्रे ! पुरुषार्थ तो समय-प्रवाह को मोड़ता और शक्ति का वरण करता है। आज हमें देशोद्धार के लिए उसी पुरुषार्थ चतुष्टय की लोक कल्याणी मूर्ति की अर्चना करनी है, आरती उतारनी है और उसके लिए हमें सर्वात्मना आत्म-निवेदन करना है। हाँ, तो आज से हमलोगों को अपने उस निश्चय के कार्यान्विय का शुभारम्भ करना चाहिये, जो मेरे सिटी कालेज छोड़ने के अवसर पर हुआ था।

सप्रे—अवश्य।

आगरकर—मैं यह कहने ही वाला था। हाँ, आज से आप हमलोगों के लोकमान्य हुए और हमलोग अब उस शब्द का व्यवहार करेंगे।

बाल—भाई आगरकरजी, आपलोग जो भी कहें, पर मुझे तो 'बाल' शब्द ही बहुत प्रिय एवं मधुर लगता है, उसमें आप जैसे बड़ों का अकृत्रिम स्नेह स्रोत जैसे उमड़ पड़ता है। अस्तु, अब हमलोगों को प्रकृत विषय पर कर्त्तव्यारूढ़ हो जाना चाहिये।

सप्रे—तो आप जो आदेश दें।

बाल—सप्रे जी ! आदेश नहीं देना है, बस, कर्त्तव्य में जुट जाना है। मैं उस बैठक की स्वीकृत योजना-पुस्तिका लाऊँ, तो अच्छा रहेगा।

आगरकर—अवश्य।

बाल—मैं अभी भीतर से लाता हूँ।

(बाल जाते और झट हाथ में लेकर आते और सब के सामने रखते हैं)

डावरे—बहुत प्रशस्त ! बहुत दिव्य है !!

सप्रे—सर्वजनसुखाय सर्वजनहिताय है।

बाल—किन्तु, विद्यावयोवृद्ध रानाडे जी को अवश्य दिखाना है।

डावरे—कब दिखाना है ?

बाल—उन्होंने आज ही आकर देखने को कहा है। (घड़ी देखकर) समय तो हो रहा है।

सप्रे—देखिये २, ३ जनों के साथ रानाडे जी उधर ही आ रहे हैं।

(उद्यान में सभी खड़े होकर रानाडे जी का चरण स्पर्श कर प्रणाम करते और रानाडे जी हाथ उठाकर आशीर्वाद देकर यथास्थान बैठते हैं)

बाल—(शिक्षा योजना पुस्तिका रानाडे जी के सम्मुख रखकर) यही है।

रानाडे—(हाथ में लेकर उसे उलट-उलाटकर देखकर) बड़ी विवेचना के साथ निष्पन्न हुई है। इसमें सन्देह नहीं कि इस योजना का प्रयोग भारत को वस्तुतः भा—रत बनाने का श्रेय प्राप्त करेगा।

बाल—इस योजना के प्रयोग से भारत में लोगों को शिक्षित बनाने के साथ-साथ हृद्गत भावों का परिष्कार एवं विकास करके भा—रत पण्डित बनाने का चिन्तन किया गया है। जिसमें चरित्र एवं मर्यादा को प्राथमिकता दी गयी है।

रानाडे—बहुत ठीक। वर्तमान शिक्षा से पल्लवग्राही शिक्षित तो बनते हैं, जिससे परमुखापेक्षी होने से बेकारी बढ़ती जाती है, किन्तु ज्ञान गम्भीर पण्डित नहीं। अपनी योजना में चरित्रवान् एवं निष्ठावान् पण्डित बनाने का चिन्तन एवं साधन है।

रानाडे—(आगरकर की ओर लक्ष्य कर) कहिये आगरकरजी ! क्या हो रहा है ?

आगरकर—इस समय तो कुछ नहीं हो रहा है। कल ही तो परीक्षाफल निकला है।

रानाडे—हाँ, कल ही तो परीक्षाफल निकला है और आपलोग उसमें सफल भी होंगे ही।

आगरकर—जी हाँ, रानाडेजी।

रानाडे—पर, रक्षा की परीक्षा में भी?

(सभी चकित)

बाल—रक्षा की परीक्षा क्या?

रानाडे—भाई, रक्षा की परीक्षा में सफल हुए बिना शिक्षा में पुस्तकपरीक्षा का क्या महत्व?

आगरकर—(उल्लसित हो) हाँ, हाँ, इसी से तो हमलोग बाल के नेतृत्व में उस के पथप्रदर्शन के लिए यहाँ आपकी सेवा में उपस्थित हैं।

रानाडे—(बाल की ओर दृष्टिपात कर) कहिये क्या चाहते हैं?

बाल—ब्रिटिश शासन का उन्मूलन और तदर्थ हमलोग जीवनोत्सर्ग तक के लिए सर्वथा सन्नद्ध हैं। इसमें आप जैसे विद्यावयोवृद्ध का परिपक्क अनुभव और आपका मन्त्रोपदेश चाहते हैं।

(सुनकर ग्रामीण चकित हो)

एक—(बीच में बात काटकर) १८५७ का विप्लव भी आपलोग जैसे युवकों ने ही किया था। उसका दुष्परिणाम आज भी देश को किस प्रकार भोगना पड़ रहा है? (रानाडे की ओर दृष्टि कर) न साधन, न साधक, न अनुभव, न संघटन! पर, ब्रिटिश शासन के विरुद्ध आन्दोलन का स्वप्न! व्यर्थ में यह शिशुचापल्य! भारतीयों पर शासन सन्देह की पुनरावृत्ति की दुराग्रहवृत्ति!

दूसरा ग्रामीण—यह धधकती अग्नि ज्वाला को बुझाने के लिए जैसे दो चार भुनगों का टूट पड़ना होगा।

रानाडे—(बात काटकर) भाई ऐसा नहीं। देश की स्वाधीनता के लिए एक बार का ही आन्दोलन पर्याप्त नहीं होता। उसके लिए

तो बार-बार आन्दोलन करना ही पड़ता है। एक क्या? १८५७ जैसे सत्तावन आन्दोलन करने पड़ेंगे भाई!

प्रथम ग्रामीण—हाँ, यह तो सही है।

रानाडे—और फिर, आज तक के आन्दोलनकारियों ने जहाँ अपने अवकाश के ही अवसर में आन्दोलन किया है, वहाँ ये युवक अपने सारे जीवन का ही उत्सर्ग करने का दृढ़ संकल्प कर चुके हैं और यदि ये सफल न भी हुए तो इनकी भूलें भी भविष्यत् आन्दोलन के लिए मार्ग प्रदर्शन में कम सहायक न होंगी?

बाल—(प्रसन्न हो, रानाडे से) तो इसका अर्थ हमलोग यह समझें कि हमारे इस निश्चय को आपका समर्थन प्राप्त है।

रानाडे—बाल जी! केवल वाचनिक समर्थन ही नहीं, हमारा हृदय भी आपके ही साथ है और सदा रहेगा।

बाल—(हाथ जोड़े) इससे बढ़ कर दूसरी क्या सहायता हो सकती है?

रानाडे— तो अब चलूँ, सन्ध्या हो चली है (बाल के कान में) शुभस्य शीघ्रम्।

बाल—(हाथ जोड़े) बहुत अच्छा। कृपा बनी रहे, शुभस्य शीघ्रमेव।

(रानाडे ग्रामीणों के साथ जाते हैं)

बाल—आगरकर जी! आन्दोलन करने का निश्चय तो हो गया। इससे हमलोग तनिक भी विचलित नहीं हो सकते। किन्तु......

सप्रे— किन्तु क्या?

बाल—यही कि इस राष्ट्रीय आन्दोलन का साधन बनाना होगा भारतीय शिक्षा संघटन को और उस शिक्षा की आधार शिला होगी भारतीव संस्कृति, सप्रे जी!

आगरकर—सप्रे जी ! इस समय सर्वप्रथम शिक्षा का ही आश्रय लेकर हमें राष्ट्रियता की जागरूक निष्ठा जगानी है । जिससे शिक्षा प्राप्त एवं सुसंस्कृत युवक हृदय से राष्ट्रिय आन्दोलन में जीवन बल दे सकें ।

बाल—हाँ, रात्रि हो गयी । अब हम लोग भी घर चलें । कल की इस नियमावली की शीघ्र प्रतिलिपि कर लेनी है, जिससे बसन्तपञ्चमी के अवसर पर विद्यालय का उद्घाटन हो सके ।

सप्र—विद्यालय का नाम क्या होगा ?

बाल—विद्यालय का नाम क्या होगा ? विद्यालय का नाम होगा महाराष्ट्र विद्यालय, जिसका प्रधान कार्यालय होगा पूना और देश भर में उसकी शाखा विद्यालय संस्थापित होंगी । आगरकर जी, चिपलूणकर शास्त्री और हम आजीवन अवैतनिक अध्यापक होंगे । हाँ, श्री आपटे जी को किसी प्रकार से विद्यालय में लाया है, जिनके कुशल कन्धे पर प्रधानाध्यापक का कार्यभार व्यस्त कर हमलोग निश्चिन्त हो उनका सहयोग करते रहेंगे ।

आगरकर—मेकाले की शिक्षापद्धति के स्थान पर स्वदेशी शिक्षा के स्वातन्त्र्य वायुमण्डल में भारत को भा-रत बनाना होगा ?

बाल—जिससे भारतीय शिक्षा के आदर्श में हम अपना सच्चा भारतीय स्वरूप भी देख सकें । किसी देश की वास्तविक शिक्षा वही हो सकती है, जिसमें उस देश के अतीत रूप की पूर्ण अभिव्यक्ति हो सके ।

आगरकर—इसी से तो हमारे यहाँ शिक्षा का स्वरूप 'वटवीज न्याय' के अनुसार समझना होता है ।

सप्रे—वटवीज न्याय क्या बला है ?

(बाल एवं आगरकर का अट्टहास)

बाल—इसी से तो मैं कहा करता हूँ कि भारतीय दर्शन पढ़ लो । भारतीय दर्शन के बिना भारतीयता का मौलिक स्वरूप नहीं अवगत हो सकता, तो आपकी जिज्ञासा है 'वटवीज न्याय' के समझने की ।

सप्रे—जी हाँ।

बाल—भाई, वट के छोटे से बीज के भीतर वट का विशाल वृक्ष निहित रहता है और उसके पूर्ण विकसित होने पर ही उस वटबीज का विकास कहा जाता है और वह विकास जिसके द्वारा होता है, वही उस विकास का कारण जैसे होता है, उसी प्रकार मानव हृदय के भीतर वर्तमान संस्कार जिसके द्वारा पूर्ण उद्बुद्ध होता है, वही उसकी वास्तविक श्रेयस्करी शिक्षा हो सकती है। इसके विपरीत मेकाले की शिक्षा पद्धति से भारतीय हृदय का संस्कार विचार विपर्यस्त एवं विकृत होता जा रहा है, जिससे उसके स्थान पर हमें भारतीय शिक्षा और उसकी स्वाभाविक पद्धति का सञ्चालन करना है।

आगरकर—इससे ४ वर्ष के भीतर परिज्ञान होने लगेगा कि प्राच्य एवं पौरस्त्य शिक्षा-पद्धतियों में वैशिष्ट्य किसमें है? हमारा हित किससे है?

सप्रे—यह शिक्षा भला स्वल्पसाध्य होगी कैसे?

बाल—सप्रेजी! हमारी शिक्षा में वाह्यकृत्रिमता न होगी। आध्यात्मिक भावों का उदय होगा। ज्ञानपरिधि अन्तर्मुखी होगी। भाषा एवं विचारों का परिष्कार होगा। अपने देश के अतीत पर गर्व एवं विश्वास होगा।

सप्रे—यह तो सही है।

बाल—तभी तो राष्ट्रियता का जागरण होगा। जैसे उधार बैल से खेती नहीं, कृषि नहीं होती, ऋण द्रव्य के भोजन से तृप्ति नहीं होती, उसी प्रकार विदेशी शिक्षा-दीक्षा से शिक्षितों, विदेशी वेषभूषा, भावनाओं से किसी भी देश का यथार्थ अभ्युदय नहीं हो सकता।

सप्रे—हाँ, अब समझ में आ रहा है कि आपकी शिक्षा बड़ी ही अपूर्व एवं लोकोत्तर होगी।

बाल—पर, अभी नहीं। विदेशी भावापन्न एवं पारतन्त्र्यपातक से कलुषित हृदय अभी इसे नहीं समझ सकेगा।

सप्रे—हाँ, एक और पूछूँ ?

बाल—अवश्य।

सप्रे—यह माना कि सभी अध्यापक अवैतनिक होंगे। समस्त अध्ययन-सामग्री छात्र अपने साथ लावेंगे। किन्तु......

बाल—पर, किन्तु क्या ?

सप्रे—यही कि विद्यालय के लिए स्थान भूमि भी प्राप्त हो जावेगी। पर, उसपर भवन निर्माण के लिए अर्थ तो चाहिये ही।

बाल—नहीं ! नहीं !! यही तो हमारी शिक्षापद्धति की विशेषता होगी, सप्रेजी ! हमारा बेजोड़ विद्यालय ईंटे-गारे की जोड़ से न बना होगा। वह विशाल तरुतलों के अधस्तल वसुन्धरा की अक्षय अञ्चल में विशालहृदय की तरह खुला रहेगा, जिसके ऊपर सघन पंक्ति में उत्तान तरुवर अपनी शीतल छाया का अनवरत दान करते रहेंगे। प्रकृति सुषमा के अङ्क में विलसित हमारा वह विद्यालय नन्दनवन के सुरनन्दनों को भी साश्चर्य एवं स्पृहयालु बनाता रहेगा। तदर्थ उसे न शासन से अनुदान की अपेक्षा होगी और न किसी सेठसाहुकार या पूँजीपति से याचना करनी होगी।

सप्रे—निरीक्षण कार्य तो शासनाधिकारी करेंगे ही ?

बाल—क्या कहा सप्रेजी ? निरीक्षण कार्य ?

सप्रे—जी हाँ।

बाल—शासनाधिकारी करेंगे ?

सप्रे—और क्या ?

बाल—(हँसकर) नहीं, कदापि नहीं। इस विद्यालय का निरीक्षण करेगी जनताजनार्दन। यहाँ पूजा होगी विद्या संस्कृति की। शासन या धन की नहीं, हाँ, किसी देशभक्त विद्वान् को हमारे विद्यालय

का निरीक्षण करने का पूर्ण अधिकार होगा। उसकी सम्मति एवं परामर्श सादर शिरोधार्य होगा, अनुकार्य होगा।

सप्रे—अब मेरी सभी शङ्काओं का यथार्थ समाधान हो गया। वस्तुतः इस शिक्षा में भारत का प्राण होगा।

बाल—अवश्य !

(सप्रे आगरकर डावरे आदि का प्रस्थान,)

हमारे विद्यालय का प्रथम वर्ष चल रहा है। प्रारम्भ में ही उसके १ सहस्र विद्यार्थी अपने विद्यालय की विशेषता का उद्‌घोष कर रहे हैं। और वर्ष के भीतर यह विद्यालय जनता की हार्दिक सहानुभूति प्राप्त कर चुका।

(श्री बर्भे शास्त्री का साक्षात्कार)

शास्त्री—कौन सहानुभूति प्राप्त कर चुका है ? विद्यालय ?

बाल—नमस्कार, शास्त्री जी !

शास्त्री—शुभमस्तु, बाल जी ! कौन सहानुभूति प्राप्त कर चुका है ?

डावरे—विद्यालय।

शास्त्री—आपका विद्यालय तो इस जनपद में अद्भुत हो चुका है।

डावरे—ऐसा ?

शास्त्री—और क्या ? आपके विद्यालय के सम्मुख कोई भी विद्यालय नहीं ठहर पाता। यहाँ के छात्रों की अध्ययनशीलता, गम्भीरता, मर्यादानिष्ठता और सबसे बढ़कर राष्ट्रियता श्लाघ्य ही नहीं, अनुकरणीय भी हो रही है।

(वैजापुरकर जी का प्रवेश)

डावरे—नमस्कार वैजापुरकर जी ! कहां से आना हो रहा है ?

वैजापुरकर—नमस्कार ! विद्यालय से।

डावरे—विद्यालय के विषय में लोगों की स्पृहा एवं श्लाघा उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है। राजकीय-विद्यालय के प्रधानाध्यापक श्री

मोडक को भी प्रसङ्ग वश कहना पड़ा है कि कुकुरमुत्ते की तरह क्षण-जीवी ऐसे विद्यालय से हमारे विद्यालय की क्षति की कोई आशङ्का नहीं। इधर नगर की सेवा एवं वाद प्रतियोगिता में भी हमारे ही कालेज के छात्र सर्वप्रथम आये हैं। सार्वजनिक सेवाएँ हमारे छात्रों की समाज-निष्ठा पुकार पुकार कर कह रही हैं!

वैजापुरकर—हाँ, उस दिन मण्डल-विद्यालय-निरीक्षक भी आपके विद्यालय की स्तुति कर रहे थे। वर्ष भर के भीतर विद्यालय आशातीत बढ़ गया है, अब उसे राजकीय सहायता मिलनी ही चाहिए।

बाल—यही तो उसे नहीं चाहिये वैजापुरकर जी।

वैजापुरकर—क्यों? (चकित मुद्रा में)।

बाल—आप तो जानते ही हैं कि बालजी कितने दूरदर्शी हैं और फिर किस उद्देश्य से विद्यालय स्थापित है? जिस शासन नीति के विरुद्ध इस विद्यालय की स्थापना हुई है, उससे अनुदान का उपजीवन क्या विद्यालय के लिए श्रेयस्कर हो सकता है? जिस दिन से शासन का अनुदान प्रारम्भ होगा, उसी दिन से उस पर नियमन एवं नियन्त्रण भी। प्राचीन भारत की शिक्षापद्धति के समान अपनी शिक्षा को शासन से पृथक् एवं स्वतन्त्र रखना है। जहाँ आज के विद्यालयों के स्नातकों का कर्त्तव्य समाप्त होता है, वहाँ से हमारे विद्यालय के स्नातकों के कर्त्तव्य का प्रारम्भ होता है।

वैजापुर—अवश्य!

सप्रे—फिर, वही तो हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन के सफल कर्णधार एवं सजग प्रहरी होंगे।

बाल—और क्या? और तभी तो भारतीय शासन के भारती विद्यालय आयोग के अध्यक्ष विलियम हंटर ने हमारे विद्यालय के विषय में लिखा है इस विद्यालय की प्रगति देखते हुए निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ भारत में इस कोटि का एक भी विद्यालय नहीं है।

वैजापुरकर—सुना है कि श्री आपटे जी आ गये।

बाल—आ ही नहीं गये, प्रधानाध्यापक का कार्य सम्पादन भी कर रहे है।

वैजापुर—यह तो सोने में सुगन्ध हो गया।

बाल—श्री आपटे विद्यालय देखेंगे। हम लोग वृत्तपत्र प्रकाशित करने की चिन्ता में लगे हैं।

वैजापुर—पत्र प्रकाशन भी?

सप्रे—और क्या? दो पत्र प्रकाशित होते हैं एक मराठी का केसरी, दूसरा इंगलिश का मराठा।

वैजापुर—साधुवाद! बाल! साधुवाद!! जो औरों के लिए असम्भव है, वह तुम्हारे लिए संभव और सरल है।

(सबका प्रस्थान)

स्थान—पूना बाजार—पत्र का हाकर चिल्लाता हुआ

एक हाकर—निकल गया आगरकर के सम्पादकत्व में! भारत का एकमात्र राष्ट्रिय-पत्र! मराठी केसरी! निकल गया!! ब्रिटिश शासन हस्ती को पछाड़ने वाला केसरी एक आने में!

दूसरा हाकर—बालगङ्गाधर तिलक के सम्पादकत्व में! निकल गया! इंगिलिश का अद्वितीय पत्र मराठा निकल गया! एक आने में लीजिए, देखिए! ब्रिटिश शासन की कठोरता। सोचिए भारतोद्धार का सफल उपाय!

(मार्ग में घारोकर शास्त्री, डावरे, कुछ ग्रामीणों के बीच)

एक ग्रामीण—(चकित से) यह क्या चिल्ला-चिल्लाकर बेंच रहा है।

डावरे—यह दैनिक पत्र है।

दूसरा ग्रामीण—यह दैनिक पत्र कौन सी बला है?

डावरे—अरे भाई ! यह पत्र है, जिसमें देशदेशान्तर का हाल प्रति दिन छपता और इसी प्रकार यह बोल-बोलकर बेंचता है ।

एक ग्रामीण—तो इससे लाभ ! एक आने की तो मिठाई...

डावरे—किन्तु संसार भर का समाचार जो घर बैठे-बैठे एक आने में मिल जाता है ।

दूसरा ग्रामीण—ऐसा ? घर बैठे-बैठे समाचार मिल जाता है ? एक आने में ?

डावरे—और क्या ?

घारोकर—यह केसरी कहाँ से निकल रहा है ।

डावरे—केवल केसरी नहीं, मराठा भी । केसरी मराठी में, मराठा इंगलिश में ।

घारोकर—अच्छा ? (एक आना देकर हाथ में लेकर) बड़ा सुन्दर उग्र राजनीति का पत्र है । सम्पादक हैं बालगङ्गाधर तिलक । यह बालगङ्गाधर तिलक कौन है ?

डावरे—आप नहीं जानते ? आपके ही तो भागिनेय हैं ।

घारोकर—अच्छा, बाल ?

डावरे—और क्या ? अब बाल नहीं तिलक ।

घारोकर—भाई ! आपकी बात समझ में नहीं आती ।

डावरे—क्या आपको ज्ञात नहीं कि विजय दशमी के पुण्य पर्व पर पूना युवक मण्डल की ओर से उनकी कार्यदक्षता एवं कर्मठता के लिए बाल को 'तिलक' की उपाधि दी गयी है ।

घारोकर—भाई ! मुझे ज्ञात नहीं, मैं बहुत वर्षों पर परसों उत्तर काशी की तीर्थयात्रा से लौटा हूँ । बड़े ही हर्ष की बात है कि इतनी स्वल्प आयु में ही 'बाल' इतना लोकप्रिय बन गया । सचमुच, ईश्वर की कृपा से ही देश को लोकमान्य जैसा उन्नायक मिला है, जिसके हृदय में धर्म का अपूर्व अनुराग भरा हुआ है ।

डावरे—और क्या ? बाल वस्तुतः महाराष्ट्र का ही नहीं, भारत का तिलक हो रहा है।

(घाणेकर का प्रस्थान और प्रो. छत्रे का प्रवेश)

छत्रे—इसमें क्या सन्देह !

डावरे—महाराष्ट्र राष्ट्रिय विद्यालय तो शासनाधिकारियों की दृष्टि में भी प्रशंसित हो रहा है। अब उसके शाखाविद्यालयों का जैसे जाल फैलता जा रहा है। तिलक ने बड़े कौशल से श्री आपटे को बुलाकर उनके कन्धे पर विद्यालयों का सारा कार्यभार न्यस्त कर इस समय वह वृत्तपत्र के प्रकाशन में ही सर्वथा संलग्न हैं।

छत्रे—घाणेकर जी ! वस्तुतः इस दुर्दिन में लोकमान्य-सा कर्मठ विद्वान् सौभाग्य से ही राष्ट्र को मिला है। जैसे वह विद्वान् हैं, वैसे ही चरित्रवान्। जैसी उनकी वाक्पटुता है, वैसी ही लेखन-शक्ति और सबके ऊपर तो है उनका अप्रतिहत स्वदेशानुराग। इसी से महाराष्ट्र का वस्तुतः तिलक बन रहे हैं।

डावरे—उनकी राष्ट्रिय प्रतिभा से प्रभावित होकर भारत उन्हें अपना 'लोकमान्य' नेता स्वीकार करेगा।

छत्रे—('केसरी' पढ़ते हुए) बड़ा उग्र विचारक है। देखिये अग्रलेख का शीर्षक ! कितना भावपूर्ण श्लिष्टात्मक उग्र विचार है—

स्थितिं नो रे ? दध्याः क्षणमपि मदान्धेक्षण ! सखे !
गजश्रेणीनाथ ! त्वमिह जटिलायां वनभुवि !
असौ कुम्भिभ्रान्त्या खरनखरविद्रावितमहा-
गुरुग्रावग्रामः स्वपिति गिरिगर्त्ते हरिपतिः।

'मद से अन्धे बने हे हाथियों के समूह के नायक ! इस सघन बनभूमि में एक क्षण भी मत रह। क्यों कि हाथी के भ्रम से अपने प्रखर नखों से विशाल विशाल पाषाणखण्डों को चूर्ण-चूर्ण करने वाला सिंह

इसी पर्वत के कन्दरों में सो रहा है !' कितना सुन्दर श्लेष ! कितना गंभीर व्यङ्ग ! और कितना उग्र विचारों का अभिव्यञ्जक है ।

डावरे—इन दोनों पत्रों के द्वारा कांग्रेस सिद्धान्त का समर्थन ! शिक्षासुधार, भारतीय राजनीति-प्रतिपादन की विशेष चर्चा होगी । अब विदेशी शासन के चाटुकार पत्रों एवं समर्थकों की जमकर आलोचना होगी ।

घाणेकर—अर्थ की व्यवस्था !

डावरे—अर्थ की चिन्ता ? एक सप्ताह के भीतर ही ये पत्र अपने पैर पर खड़े हो गये । इनपत्रों के प्रकाश में विदेशी नीति के समर्थक पत्र आज वस्तुतः धूमिल हो रहे हैं । और साराकार्य तो तिलक स्वयं करते हैं ।

घाणेकर—साराकार्य स्वयं करते हैं ?

डावरे—साराकार्य मत पूछिए । 'केसरी' प्रकाशन के प्रथम दिन तो वह टाइप भरा केस अपने ही सिर पर रखकर ले आये । सारा मैटर बैठकर आपने लिखा और छप जाने पर ग्राहकों के घर स्वयं पहुँचाया ।

छत्रे—ऐसा ?

डावरे—सम्पादक कक्ष में कुर्सी के स्थान पर कम्बल ! मेज के स्थान पर विस्तर का बण्डल !!

वझे—ऐसे ही कर्मठ के लिए न कहा गया है ।

'क्रियासिद्धिः सत्त्वे भवति महत्तां नोपकरणे ।'

डावरे—आज महाराष्ट्र का बच्चा-बच्चा तिलक के त्याग एवं अध्यवसाय से प्रभावित हो उनको एकमात्र अपना कर्णधार मान चुका है । तिलक के शिक्षा संघटन, पत्रप्रकाशन, एवं कांग्रेस की व्यापी-करण में देशोद्धार की ही उत्कट कामना एवं चरमलक्ष्य है । केसरी को प्रकाशित

हुए अभी एक मास भी नहीं हुआ कि शासन की शनि दृष्टि इस पर लग गयी।

बफे · अवश्य !

डावरे—पर, तिलक भी राजनीति के दाव-पेञ्च की कम गहराई के गोता लगाने वाले नेता नहीं हैं। यदि ब्रिटिश शासन अपनी कुटिल छलछद्मनीति से बाज नहीं आता, तो तिलक भी देशोद्धार के अपने सिद्धान्त विचार से गिरकर जीवन की कामना करने वाले नहीं।

बफे—इसमें सन्देह नहीं कि एक ओर यदि ब्रिटिश शासनको अपने ऐश्वर्य के शक्ति साधन पर गर्व है तो इसकी ओर साधन हीनता का पूर्ण अनुभव करता हुआ भी (वज्रादपि कठोराणि) जैसा कर्कश तिलक पत्त। यह बात भारत से लेकर योरप तक व्याप्त एवं स्पष्ट है।

घाणेकर—किन्तु, बाल के परिवार की क्या दशा होगी ?

डावरे—बाल के परिवार की दशा ? लोक-सुखशान्ति से बञ्चित। पर, यशोगान भी तो कोई वस्तु हैं ! आज जो सम्मान 'बाल' को प्राप्त है, वह किसी सम्राट् को भी नहीं मिल सकता। यह उस परिवार के लिए अम सुख सौभाग्य की बात है ? पहिले तिलक का एक परिवार था, अब तो समस्त स्वदेश ही उनका परिवार है।

बफे—सही है।

ढावरे—परिवार से भी अधिक शुभैषी। ब्रिटिश शासन का उन्मूलन करने वाले राष्ट्रिय आन्दोलन के लिए जिस भारतीय शिक्षा की व्यवस्था-लता बाँधी है, उसकी जड़ अब पाताल में चली गयी है। 'केसरी' और 'मराठा' उसके स्कन्ध बन कर प्रबल प्रसारक हो रहे हैं। अब तिलक का तृतीय चरण राष्ट्रिय आन्दोलन के लिए शीघ्र ही उठ खड़ा होगा।

बफे—तिलक ने अपने आन्दोलन का क्षेत्र परिष्कृत कर लिया है, इसमें सन्देह नहीं।

डावरे—और क्या ? तिलक के अनवरत घोर परिश्रम एवं अपूर्व अध्यवसाय के बल पर शान्त एवं सबल 'राष्ट्रिय युवक संघ' प्रलयङ्कर मेघ की तरह गर्ज उठेगा और 'केसरी' एवं 'मराठा' विद्युत की तरह उसकी गर्जनध्वनि का प्रसार करने में समर्थ हो सकेंगे। महाराष्ट्र शिक्षा-संस्थाओं में शिक्षित एवं दीक्षित स्नातक तिलक का सफल प्रातिनिध्य करने के लिए निकल पड़ेंगे। 'रावण' रथी जैसा शक्ति-सम्पन्न ब्रिटिश शासन एवं 'विरथ रघुबीर' जैसे साधनहीन स्वदेशभक्तों का तुमुलद्वन्द्व।

बभे—ईश्वर देशोद्धार के इस प्रचण्ड द्वन्द्व में तिलक को विजयी बनावेगा।

डावरे—अवश्य।

तृतीय अङ्क

स्थान—पूना, केसरी कार्यालय

तिलक—(सम्पादनकक्ष में) हमारे शिक्षा-प्रतिष्ठान के अभी अधिक वर्ष व्यतीत भी नहीं हुए कि उसके विकासन भोमण्डल में विकट सङ्कट के बादल भीषण गर्जना कर रहे हैं। उसको अपने उत्थान पतन की गभीरवीथियों से सँभल-सँभल कर चलना पड़ रहा है। फिर भी लोक-प्रियता के सुपथ पर गतिमान् है। भयमुक्त है. जनानुरक्ति-युक्त है। अबाध गति से प्रवर्धमान हो रहा है। अब उसमें राष्ट्रिय आन्दोलन में सहायता प्रदान करने की शक्ति आ चुकी है। उसके स्नातक आन्दोलन की रणस्थली में अवतीर्ण हो स्वदेशभक्ति की सर्वोत्तम परीक्षा में उत्तीर्ण हो सकते हैं।

सप्रे—(पराञ्जपे के साथ प्रवेश करते हुए) केवल भेरीनाद की प्रतीक्षा है ? बस ! अब शङ्ख फूँको जनार्दन ! एक नहीं, अनेक-अनेक अर्जुन भीम आपके अनुगत खड़े हैं।

तिलक—(चौंक कर) सप्रे जी ? अहा ! पराञ्जपे जी भी ? नहीं, नहीं। भारत वसुन्धरा के उद्धारक अर्जुन ! भीम !

(डाकिया का प्रवेश)

तिलक—(पत्र खोल कर) अच्छा ? बंगाल ने प्रारम्भ कर ही दिया। महाराष्ट्र अभी सोच ही रहा है।

सप्रे—किसका पत्र है ?

तिलक—यह पत्र विपिनचन्द्र पाल का है ?

सप्रे—बङ्गाल ने प्रारम्भ कर दिया।

तिलक—भाई, अब यह बंगाल महाराष्ट्र का प्रश्न नहीं; समस्त भारत का प्रश्न है, स्वदेश का स्थूलरूप शरीर के समान ही है। पैर में

काँटा गड़ता है तो मस्तिष्क तिलमिला उठता है। उसी प्रकार स्वदेश के एक कोने के संघर्ष संकट को समस्त देश का संकट समझकर उसके प्रतिकार में जुट जाना चाहिए। यह बंगाल का संकट समस्त भारत का संकट है। उसके लिए हमें सर्वस्व लगाकर भारत का सम्मान रखना है।

पराञ्जपे—सेनानी के समक्ष सैनिक को कुछ नहीं कहना होता। बस, अब आदेश दें, हमलोग उसके पालन में सर्वस्व लगा दें।

तिलक—इसके लिए कल ही 'राष्ट्रिययुवकसंघ' की आवश्यक बैठक बुलाइए।

सप्रे—यह गोरे हमलोगों को तृणवत् समझते हैं। अब दिखा देना है कि हमलोग क्या कर सकते हैं ?

तिलक—तृण समूह भी जब रज्जु रूप में प्रकट होता है। तब उससे बड़े से बड़ा गजेन्द्र भी आबद्ध हो चीटी की तरह विवश एवं अशक्त हो जाता है। उसी प्रकार प्रत्येक प्रान्त के नागरिक सुसंघटित हो बंगभूमि की ओर चल पड़ें और दिखा दें संसार को कि शरीर से परतन्त्र होकर भी भारतवासी बुद्धि विवेक एवं मनसे स्वतन्त्र और एक हैं। अपने में अनेक होते हुए भी दूसरे के लिए सब एक हैं। यह विचार इदानींतन नहीं, पुरातन है। इसी में सनातनधर्म का महाप्राण है।

सप्रे—ऐसा ?

बाल—और क्या ? चारों धामों के प्रतिष्ठान संकल्प में उसके अतिरिक्त दूसरा क्या है ? दूर-सुदूर का दाक्षिणात्य वदरिकाश्रम की यात्रा करे और वदरिकाश्रमी दक्षिण के सेतुबन्ध रामेश्वर की। प्रान्तों एवं प्रदेशों की सीमा विभक्ति होने पर भी सनातनी की उस अविभक्त अविकृत भावना में किसी प्रकार की विकृति का दर्शन नहीं हो पाता ! संसार में कितने परिवर्तन विकर्तन हुए, पर उस भावना की एक रूपता एक निष्ठता भारतीयता को आज तक भी अविभाज्य रखती चली आ

रही है। इसलिए बंग देश हमारा स्वदेश और यह महाराष्ट्र प्रदेश बंग देश का अविभक्त अंग होने से उसके सङ्कट को अपना सङ्कट समझता हैं। जिस उद्देश्य से राष्ट्रिय युवक संघ की स्थापना हुई थी, उसकी सफलता का यही अवसर है। ऐसे ही अवसर पर महारानी कुन्ती ने एक बार कहा था।

'यदर्थं क्षत्रिया सूते तस्य कालोऽयमागतः'

वत्स! जिस दिन के लिए क्षत्राणी पुत्रका प्रसव करती है वह समय आज आ गया है।

सप्रे—(हाथ जोड़े) हमलोग सर्वथा सन्नद्ध हैं। कल की समिति की सूचना भेजने जा रहा हूँ। (सप्रे का प्रस्थान और बर्वे का प्रवेश तिलक लिख रहे हैं, बर्वे को देखते ही उठकर वेग से दौड़कर चरण स्पर्श पूर्वक प्रणाम करते और गुरुदेव बर्वे पीठ ठोक कर आशीर्वाद देते हैं।) तिलक (हाथ जोड़े आसन का सङ्केत कर) बैठा जाय। (दोनो यथा स्थान बैठते हैं।

तिलक—कहिये कुशल तो है? बहुत दिनो के उपरान्त दर्शन मिले। कुशल तो है?

बर्वे—ईश्वर की कृपा से सकुशल हूँ। आज एक आवश्यक कार्य से आया हूँ।

तिलक—हाँ, तो कृपया कहा जाय।

बर्वे—इस समय मैं पदच्युत कर दिया गया हूँ।

तिलक—क्यों?

बर्वे—(कान में)।

तिलक—बस, यही कार्य? (बर्वे संकुचित हो रहे हैं)।

तिलक—नहीं, संकोच की कोई बात नही। आप चिन्ता न करें। एक सप्ताह के भीतर उसे अपना आदेश लौटाना ही पड़ेगा।

बर्वे—अब तो मेरी ....।

तिलक—अवश्य।

बर्वे—मुझसे जो अपराध हुआ है उसे ....।

तिलक—हें हें! यह क्या कहा? आपने तो अपने कर्त्तव्य का पालन किया था।

बर्वे—तो मैं चलूँ?

तिलक—चल सकते हैं। इसके लिए आपको दौड़ने की कोई आवश्यकता नहीं। मैं इसे सचेष्ट ही सम्पन्न करूँगा।

बर्वे—ईश्वर आपको दीर्घायुष्य दे (बर्वे जाते, तिलक पीछे पीछे हाथ जोड़े द्वार तक जाते हैं)

बर्वे—(मार्ग में चिन्तन करते हुए बर्वे) वस्तुतः बाल महाराष्ट्र का तिलक ही नहीं! विश्व का महान् लोकमान्य है। मैं बाल के लिए कैसा कठोर! कैसा निर्दय! वह मेरे लिए कितना कोमल। कितना महान् असहाय के सहायक बाल! महाराष्ट्र के तिलक!! तुम वास्तव में विश्व के महान् लोकमान्य हो! ईश्वर तुम्हें दीर्घायुष्य दे और दे ऐसा तेजोमय बल, जिससे तुम अपने राष्ट्रोद्धार के संकल्प को सफल कर सको (डावरे सामने से हाथ जोड़े आकर चरणस्पर्श पूर्वक)!

डावरे—प्रणाम गुरुजी।

बर्वे—जय! जय!! डावरे जी?

डावरे—(हाथ जोड़े) जी, हाँ आपका शिष्य डावरे। कहाँ से आना हो रहा है?

बर्वे—तिलक जी के यहाँ से।

डावरे—कहाँ हैं?

बर्वे—अभी तो कार्यालय में ही होंगे। भाई! कभी कभी गुदड़ी में भी लाल छिपा रहता है। पर, बाल गुदड़ी का लाल नहीं, वह तो जन्मतः प्रकाश! ज्योतिर्मय है। मैं उसकी यथार्थ योग्यता, एवं अप्रतिम

प्रतिभा का ज्ञान रखकर भी, उसका वास्तविक मूल्याङ्कन नहीं कर सका था।

डावरे—उसकी चिन्ता आप न करें। बाल आजभी आपको उसी गुरु गौरव दृष्टि से देखते हैं। वह वस्तुतः भारत माता का ज्योतिर्मय तिलक हैं। वह शैशव काल से ही अपनी ज्ञान गरिमा से गौरवमय रहे हैं। सहपाठी से लेकर अध्यापक वर्ग तक उनका आदर करते थे। उनमें (होनहार बिरवान के होत चीकने पात) जैसे उद्भट-पाण्डित्य एवं अपूर्व भविष्णुता का ब्राह्मण्य सहृदयजनों को बहुत पूर्व दृष्टि-गोचर हुआ था।

बर्वे—सचमुच ! आज तो उसकी प्रातिभ किरणें स्वदेश को आलोकित कर रही हैं।

डावरे—जो वकालत में सर्वोत्तम हुआ। जो लोकोत्तर ज्ञानविज्ञान ! सतर्क बुद्धि विवेक ! ब्रह्मवर्चस्-सा देदीप्यमान शरीर के साथ-साथ अपनी पैत्रिक सम्पत्ति का विनियोग कर स्वदेश को स्वतन्त्र देखना चाहता है। तदर्थ कारायन्त्रणा क्या नरक-यातना तक सहन करने का दृढ़ सङ्कल्प कर चुका है, वह बाल तिलक या लोकमान्य ही क्यों, हमारे लिए साक्षात् देवता है ! देवता ! गुरुजी।

बर्वे—इसमें क्या सन्देह !

डावरे—अच्छा तो चला जाय। (डावरे का भीतर प्रवेश और बर्वे का प्रस्थान)

डावरे—(तिलक लिख रहे हैं, उनके पास पहुँच कर) नमस्कार !

तिलक—(ऊपर मस्तक उठाकर) नमस्कार ! अच्छा ! डावरे जी !

डावरे—जी हाँ, अभी मुझे श्री सप्रे जी की सूचना मिली है तो आया कि आपसे सब समझ लूँ।

तिलक—(कान में) समझे न। आन्दोलन के लिए इससे अच्छा अवसर पुनः मिलना कठिन है। यह बंगाल के लिए ही नहीं, भारत

के लिए खुली चुनौती है। ऐसा शुभ अवसर फिर नहीं आने का। इस समय चूक हुई तो इसका दुष्फल भारत को बहुत दिनों तक भोगना पड़ेगा।

डावरे—सही है। क्षेत्र तो स्वतः तय्यार है। देश भर में वर्तमान शासन के विरुद्ध संघर्ष की लहर व्याप्त है। सारी जनता क्षुब्ध है। ब्रिटिश शासन के चाटुकार भी इस समय अंग्रेजों की बंगभंग नीति से खिन्न हो गये हैं। लीजिए खापर्डे जी भी आ हो गये। नमस्कार! खापर्डेजी!

खापर्डे—नमस्कार डावरे जी! (तिलक का चरण स्पर्शपूर्वक) प्रणाम।

तिलक—नमस्कार खापर्डे जी! (खापर्डे बैठते हैं) सूचना तो मिली होगी?

खापर्डे—हाँ, सूचना तो मिली है, तभी तो आ रहा हूँ।

तिलक—अच्छा, तो आप दोनों बैठकर बात करें, तब तक मैं अभी आता हूँ।

(तिलक भीतर प्रवेश करते हैं)

खापर्डे—भाई डावरे जी! अब तो कांग्रेस में राष्ट्रिय दल का प्रभाव प्रबल सा दृष्टिगोचर हो रहा है। ईश्वर की कृपा से ही आज 'केसरी', 'मराठा' जैसे पत्रों का प्रकाशन भी हो रहा है।

डावरे—भाई खापर्डे जी, यह तिलक जी की विलक्षण दूरदर्शिता का ही फल है। नहीं तो जो कांग्रेस सरकारी अधिकारियों एवं श्रीमान् रईसों के वार्षिक विनोद का निष्क्रिय आधार थी, उसे सक्रिय बनाने के निमित्त न जाने इन पत्रों के प्रकाशन के लिए तिलक को कितना चिन्तन और कितना अनवरत घोर परिश्रम करना पड़ा है। कभी भी वह रात को रात नहीं, दिन को दिन नहीं समझते। तब आज कांग्रेस कांग्रेस हो रही है।

खापर्डे—तभी तो आज कांग्रेस के भी बड़े से बड़े महारथी को भी तिलक का मुँह ताकना पड़ता है। जहाँ दूसरे नेता अपने गृह-कार्य के अवकाश में काँग्रेस का कार्य करते रहे हैं, वहाँ तिलक अहोरात्र अनवरत काँग्रेस की ही सेवा में व्यस्त रहते हैं।

डावरे—जैसे कांग्रेस के अतिरिक्त तिलक को दूसरा काम ही नहीं है।

खापर्डे—सचमुच, कांग्रेस में तिलक की अद्वैत भाव जैसी स्थिति हो गयी है। उनको उठने बैठने चलने-फिरने में भी कांग्रेस ही दिखायी देता है। कांग्रेस में जैसे ही राष्ट्रियता का प्रगाढ़ रङ्ग चढ़ने लगा वैसे ही कुटिल लार्ड कर्जन ने बंग विच्छेद करके उसे बिगाड़ने का प्रबल प्रयास किया है।

तिलक—(आकर) कर्जन ने उसे बिगाड़ने का प्रबल प्रयास तो किया ही है खापर्डे जी! पर, उससे कांग्रेस की व्याप्ति एवं जागृति में अच्छा बल मिला है। जो जनजागरण २५ वर्ष में होता, वह तुरत हो गया, एक दिन में हो गया। इस बंगभंग में भारत की अग्नि-परीक्षा है। इसमें हमारी देशभक्ति, एवं हमारी साधना शक्ति का परिष्कार एवं विकास होगा। यहीं से राष्ट्रिय चेतना का प्रारम्भ समझिए। देश के स्वतन्त्र होने में अभी समय लगेगा। ऐसा नहीं कि हमने जैसे आन्दोलन किया और अंग्रेज डर कर भाग गये, नहीं, ऐसा नहीं। इस समय हमें स्वतन्त्रता का मूल्य चुकाना होगा। स्मरण रहे! स्वतन्त्रता मूल्य के बिना नहीं मिलती। हम इस समय उसका मूल्य चुकावेंगे। आज शासन को दिखा देना है कि अब यह भारत वह भारत नहीं है, जिसे अंग्रेजों की दासता प्रिय थी, जिसमें चाटुकारिता के स्वांग पर रायबहादुरी रायसाहबी का पुरस्कार मिलता था और उसके प्राप्त करने में हम अपना घर लुटा देते और असीम गौरव गर्व का अनुभव करते थे। आज तो अंग्रेजों के सिर पर हमें सेर का सवा सेर रखना है, ईंट का जवाब पत्थर से देना है

और संसार को दिखा देना है कि अब भारत सिंह जाग उठा है ! उसे शृगालों का भय नहीं !!

खापर्डे—(उल्लसित हो चरण स्पर्श करता हुआ) बस, आपकी आज्ञा की प्रतीक्षा है। इधर आपकी रणभेरी बजे। उधर महाराष्ट्र का अभियान !!

तिलक—परतन्त्रता की यमयातना से जर्जर भारत माता आप जैसे सपूतों से यही आशा रखती है। आज भारत का क्या कर्तव्य है 'केसरी' के अग्रलेख में पढ़िये। तदनुसार कर्त्तव्य-पथ पर डट जाइए! हम अपने लिए अपने में १०५ हैं, पर दूसरों की आँख निकालने के लिए तो हम एक ही हैं।

डावरे—आप ऐसा ही देखेंगे।

तिलक—बस, आप लोग चलें। हाँ, यह स्मरण रहे कि स्वतन्त्रता के इस प्रथम प्रयाण में हमें सफलता यदि न मिली तो हताश होने की आवश्यकता नहीं। रणचण्डी को प्रसन्न करने के लिए बलि अपेक्षित होती है, तो हम लोगों को उसकी प्रथम बलि होने का सौभाग्य प्राप्त है, बस, यही समझ कर हमें बंगभंग का आन्दोलन करना है। आप लोग महाराष्ट्र प्रान्त में चेतना लाइए।

खापर्डे—यहाँ अब 'कार्यं साधयामि वा शरीरं पातयामि' की नीति निश्चित हो चुकी है।

तिलक—ईश्वर आप लोगों को शक्ति साधना दे।

(डाकिया पत्र देता है, तिलक खोलकर पढ़कर)

तिलक—(हाथ में पत्र लिए हुए) भाई मोतीलाल घोष, राजा सुबोध मल्लिक के संयुक्त हस्ताक्षर का निमन्त्रण-पत्र मिल गया। मुझे आज ही रात की ट्रेन से चल देना है। परसों वहाँ विचार समिति में सम्मिलित होने का आग्रह है।

खापर्डे—तब तो वहाँ कई दिन लगेंगे ही।

तिलक—अवश्य। और न जाने क्या होगा। श्री आगरकर जी से कार्य की व्यवस्था करके ही जाना है। विद्यालय से तो हम निश्चिन्त हैं। पत्रों का भार तो आगरकर जी के ऊपर रहेगा। अच्छा तो मैं चलूँ, तैयारी भी करनी है, कल का अग्रलेख लिखकर ही जाऊँगा। हाँ, आप लोग डट कर काम करेंगे ही।

खापर्डे—अवश्य। आपको तैयारी भी करनी है। हमलोग चलते हैं। आज्ञा की प्रतीक्षा में रहेंगे।

(खापर्डे के साथ डावरे का प्रस्थान)

स्थान—पूना का एक विशाल उद्यान। खापर्डे के साथ पराञ्जपे की वार्ता।

खापर्डे – लोकमान्य कल प्रातः कलकत्ता पहुँच गये। आज प्रातः उनका तार आया है। आज वे श्री विपिनचन्द्र पाल एवं श्री अरविन्द घोष के साथ ढाका जा रहे हैं। एक सप्ताह के उपरान्त पूना लौटेंगे।

पराञ्जपे—तब ?

खापर्डे—तब उनके लौटने पर ही नया कार्यक्रम होगा। उनके विचारानुसार कांग्रेस को समाज सुधार की दुर्गन्ध से बचाना होगा। गोखले दल कांग्रेस को समाज सुधार के दल-दल में फँसाना चाहता है, पर, हमलोग ऐसा न होने देंगे। इस समय हमलोगों को तिलक के आदेशानुसार स्वदेश, स्वराज्य, स्वभाषा, स्वधर्म, जैसे विषयों की चतुष्सूत्री योजना का जम कर प्रचार एवं प्रसार करना है।

पराञ्जपे—हाँ, यही हमलोगों का आवश्यक कर्तव्य है।

खापर्डे—(डाकिया से) हमारा कुछ है ? हो तो यहीं देते जाओ।

(डाकिया पत्रों का बण्डल देता है)

खापर्डे—(भारतमित्र खोलकर) प्रथम पृष्ठ पर

(कलकत्ते में लोकमान्य बालगङ्गाधर तिलक का अभूतपूर्व स्वागत)

सभा में लाखों की अपार भीड़ में लोकमान्य का सिंह गर्जन।

बंगभंग पर बाल पाल लाल द्वारा ब्रिटिश नीति की कड़ी आलोचना।

पराञ्जपे—यह बाल पाल लाल क्या ?

खापर्डे—आप नहीं जानते ?

पराञ्जपे—बाल से बालगङ्गाधर तिलक, पाल से विपिनचन्द्र पाल और लाल से लाला लाजपतराय का तात्पर्य है।

पराञ्जपे - इन तीनों के सिद्धान्त विचार कार्य में जैसा योगमेल है वैसा ही इन तुकान्त नामों का योग भी बड़ा आकर्षक है।

खापर्डे—(भारतमित्र बाँचते हैं) बरीसाल में समुद्र की तरह अपार जनसमूह के बीच लोकमान्य ने कहा कि ब्रिटिश शासन यदि बंगभंग कर भारत को गारत करना चाहता है तो हमें उस ब्रिटिश शासन को भारत की पवित्र भूमि से उखाड़ फेंकना है। उस स्वतन्त्र अभिनव भारत में यदि शासनाधिकारी रहना चाहेंगे तो रह सकेंगे। उनसे हमारा विरोध नहीं। पर, उनका सत्तासूत्र, उनके व्यापार की चुटिया हमारे हाथ में होगी। उनके पद जीवन का दायित्व हमारे ऊपर आधृत होगा। अब यह शासन अपने अन्तिम क्षण की घड़ियाँ गिन रहा है। मुजफ्फरपुर की बमबाजी, महाराष्ट्र का बमकाण्ड ब्रिटिश शासन की दुर्नीति के दुष्परिणाम हैं। शासनाधिकारी समझते हैं कि बंग विभाजन से बंगीय युवक दब जावेंगे और हम शान्तिपूर्वक शासन करते रहेंगे, यह भारी भूल है। यह उनकी बुद्धि-विवेक नीति का दीवालापन ही है। शासित को दबाने से शासन स्थायी नहीं होता। यह बंगभंग भारत के जागरण में साधक ही हुआ है।

पराञ्जपे—इतनी कड़ी आलोचना ! इतनी निर्भयता के साथ ब्रिटिश शासन का प्रबल विरोध ! ऐसा ही उग्र भाषण लाल पाल के भी।

खापर्डे—यह तीनों कांग्रेस के अप्रतिम नेता हैं। यह बोलते हैं यहाँ, काँपते हैं गोरे इंगलैण्ड के। लोकमान्य तो सदा इसी प्रकार दहाड़ते रहते हैं। वह अपना एक पैर तो कारावद्ध ही समझते हैं।

पराञ्जपे—वास्तविक नेतृत्व शक्ति तो लोकमान्य में ही है, उसपर उनके अरविन्द के साथ साथ लालपाल जैसे सबल सहयोगी हैं। जैसा वाणी में बल है, वैसा ही लेखनी में हृदय-प्रतिविम्व ! जैसी भाषण शक्ति है वैसा ही स्वदेशानुसार। ऐसा नेता भारत में आज दूसरा नहीं।

खापर्डे—इसमें क्या सन्देह ? 'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' स्वदेशी प्रचार हमारा जन्मसिद्ध कर्त्तव्य है। ऐसा उद्देश्य लोकमान्य के अतिरिक्त दूसरा कौन कर सकता है ? इस प्रकार के भीषण भाषण से लोकमान्य कहीं बंगाल में ही पकड़ न लिए जाँय।

पराञ्जपे—हो भी सकता है।

खापर्डे—वृत्तपत्र को रखकर, हाथ में पत्र लेकर खोलते और बाँचते हैं।

'भाई खापर्डे, इस समय बंगाल में तूफान आया है। मैं यहाँ की स्थिति सँभाल कर ही आऊँगा। हमारे साथ महामना पं० मदन मोहन मालवीयजी भी आवेंगे। वे काशी-विश्वविद्यालय खोल रहे हैं। आप लोग विद्यालय को भी देखते रहेंगे। एक पत्र प्रधानाध्यापक को भी लिख रहा हूँ। वह अपेक्षित सहायता आपसे मांगे तो आप शीघ्र उसे पूर्ण कर देंगे। मैं सप्ताह के भीतर ही आ जाता हूँ। हां, राष्ट्रिय आन्दोलन का प्रासाद खड़ा करने के लिए वीर पुरुषों की जयन्ती के आधार पर ही गणेशोत्सव, वीर शिवाजी के मेलोत्सव को सफल बनाने का उद्योग करेंगे। यदि यहीं पकड़कर कारावद्ध कर लिया गया, तब तो आपलोग मेरे स्थान पर रहकर कार्य करेंगे।

पराञ्जपे—अवश्य किया जायेगा। कार्य की गति में अवरोध न होने पायेगा।

स्थान—सूरत, कांग्रेस महाधिवेशन का विशाल मण्डप।

(मण्डप से बाहर लोकमान्य और सप्रे बैठे हैं)

सप्रे—अब तो कांग्रेस का अन्तर्विरोध समाप्त हो गया।

लोकमान्य– कैसे ?

सप्रे—सुना है कि आपके उद्योग से दोनो दलों का संघर्ष समाप्त हो गया।

लोकमान्य—हाँ, इस समय तो समाप्त ही है, किन्तु ......।

सप्रे –किन्तु क्या ?

लोकमान्य –यही कि कलकत्ते में दादा भाई नौरोजी के प्रबल प्रयत्न से नर्मगर्म दलों का अन्तः संघर्ष समाप्त हो गया और वह बीच में न पड़े होते तो निश्चय ही नर्म गर्म दल (दोनों) कांग्रेस से पृथक् हो जाते। कांग्रेस की सत्ता समाप्त हो जाती।

सप्रे—ऐसा ?

लौकमान्य – और क्या ? आप क्या समझते हैं! अभी कल की बात है कि फिरोजशाह मेहता ने इस समझौते पर व्यङ्ग्य कसते हुए मुझसे कहा कलकत्ते में आपने यह प्रस्ताव स्वीकृत करा लिया! बम्बई में कराना असम्भव हो जाता!" इसपर मुझसे भी नहीं रहा गया। मुँह से निकल पड़ा मैं बम्बई में होता तो क्या होता ? वहाँ भी हम आपको देख लेते।' इससे क्या अभिव्यक्त होता है ?

सप्रे—हाँ, इससे तो अन्तर्विरोध की ही अभिव्यक्ति होती है।

लोकमान्य—और क्या।

सप्रे—तब!

लोक—तब क्या ? अवसर पाकर कभी भी यह विरोधाग्नि धधक सकती है।

सप्रे—उसके शान्त करने का कोई उपाय नहीं है।

लोकमान्य—है क्यों नहीं ? और हम उपाय करने से विरत नहीं हो सकते। पर, मनःशुद्धि के बिना कोई उपाय सफल हो ही नहीं सकता। पाश्चात्य दासता से कलुषित मन की शुद्धि का अवसर ही कहाँ ? यदि स्वधर्म, स्वभाषा, स्वदेश पर गर्व होता, ममता होती! तब

तो मनःशुद्धि का प्रश्न ही नहीं, इस प्रकार का संघर्ष ही नहीं होता। और तब कोई भी उपाय सफल होता। मैं अपने विचारों को बहुत कुछ दबा कर नर्म दल के साथ मिलकर कांग्रेस को सबल एवं सफल बनाने की चिन्ता करता रहता हूँ।

सप्रे ठीक कहते हैं, वे लोग न जाने क्यों राष्ट्रियता का विचार ही नहीं करते? जहाँ भारत और इंगलैण्ड की चर्चा चलती कि इंगलैण्ड की स्तुति करने में वे अघाते नहीं।

लोकमान्य—यही तो बात है। फिर ऐसे लोगों के साथ समझौता करके भी क्या हो सकता है?

सप्रे—हाँ, कुछ नहीं।

लोकमान्य—आपको स्मरण होगा ही कि नागपुर में श्री गोखले श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी जैसे नर्म दल के वयोवृद्ध नेताओं ने हमारे दल के साथ कैसा व्यवहार किया है!

सप्रे—हाँ, स्मरण है कि नर्म दल के इन वयोवृद्ध नेताओं ने गर्म दल के वयस्कों के साथ संघर्ष करके कांग्रेस का महाधिवेशन पूना में नहीं होने दिया।

लोकमान्य – तब मैंने पञ्जाब में करने का उद्योग किया। उसमें भी वे लोग अपनी कूटनीति कर बाधा डालने से बाज नहीं आये।

(विपिन चन्द्रपाल का प्रवेश)

लोकमान्य—अहा! पाल जी! आइए! आइए!! (आगे बढ़कर)

पाल—(हृदय में लगाकर) कहिये, वहां तो ठीक है।

लोकमान्य—ठीक ही है।

पाल—क्या वहां भी ......

लोकमान्य—नर्म दल वाले वहां भी अपने स्वभाव से बाज नहीं आये।

पाल—जैसे?

लोकमान्य—यही कि यहां की अध्यक्षता के लिए लाला जी के नाम पर बहुमत था। पर, नर्म दल वालों ने षड्यन्त्र करके रास बिहारी घोष का नाम प्रस्तावित कर दिया। पर, लालाजी ने अपने सौम्य स्वभाव के कारण उसे अस्वीकृत कर दिया। फिर मैंने नर्म दल वालों से अनुनय विनय करके संघर्ष को किसी प्रकार शान्त किया। फिर भी गर्म दल वालों का हृदय शान्त नहीं है।

पाल—यह तो मैं जानता हूँ। (दल-बल के साथ यह कौन आ रहे हैं ?)

(दोनों उठ खड़े होते और स्वागताध्यक्ष प्रणाम करके उन्हें आगे करके पीछे पीछे चलते हैं, तब तक सुरेन्द्रनाथ बनर्जी भी अपने दलबल के साथ प्रवेश करते हैं, सभा मण्डप प्रतिनिधियों से भर गया है, मनोनीत अध्यक्ष के नाम का प्रस्ताव सुरेन्द्रनाथ बनर्जी जैसे ही करने को उठते हैं, वैसे ही (बंगाल प्रतिनिधियो की ओर से) 'मेदनीपुर का गद्दार' 'मेदनीपुर का गद्दार' के नारे से सभा में कुहराम मच गया। फिर तब स्वागताध्यक्ष के अनुनय विनय पर शान्ति आयी। इतने में स्वागताध्यक्ष के पास 'मुझे अध्यक्ष के निर्वाचन के विषय में कुछ बोलना है, बोलने के लिए समय माँगा। उसकी उपेक्षा किये जाने पर तिलक स्वयं मञ्च की ओर बढ़े, तब तक स्वयंसेवक ने रोका, वह न रुक कर मञ्च पर अध्यक्ष के मेज के समीप खड़े हो गये। अध्यक्ष रासबिहारी घोष ने यह कह कर रोका कि अध्यक्ष के नाम का प्रस्ताव का अनुमोदन समर्थन भी सविधि समाप्त हो गया है। (तब तिलक वहाँ डट गये)।

लोकमान्य—"मैं यहाँ से हटने वाला नहीं, जिसमें साहस हो, वह हटाने का प्रयत्न करे।' (इतने में स्वागत समिति की ओर से तिलक की ओर जूता फेंका गया, जो सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के मस्तक का

स्पर्श करता हुआ फिरोजशाह मेहता के सिर पर जा लगा। तदुपरान्त भयङ्कर कोलाहल हो जाने से सभा भंग हो गयी)।

(सभा भङ्ग)

स्थान—बम्बई का कारागृह। छड़दार प्रकोष्ठ में एकाकी लोकमान्य चिन्तन अवस्था में। मेज पर दर्जनों विधि संहिता ग्रन्थ। दूसरी ओर कागज के छोटे-छोटे लम्बे टुकड़े, पेन्सिल।

लोकमान्य—जब यह शरीर ही देशोद्धार की आहुति कुण्ड के लिए अर्पित हो चुका है, तब कारागृह के लिए चिन्ता क्या? यह क्या, इसकी दस गुणी यातनाएँ भी मुझे अपने सिद्धान्त विचार से डिगा नहीं सकतीं। (रामो द्विर्नाभिभाषते) जैसा मैं भी द्वैतभाव में नहीं बोलता, नहीं चलता। मेरा एक रूप एक विचार एक कार्य है देशोद्धार। मैं महात्मा तो नहीं हूँ। पर, यह बड़ी दृढ़ता से कह सकता हूँ कि मेरी वाणी, मेरे मन एवं मेरे कार्य की एक रूपता में अन्तर न होगा। इसमें कभी भी तनिक विपरीतता नहीं आने पायेगी। (घड़ी देख कर) रात के ११ बज गये! (गोरा प्रहरी से) देखो! यदि तुम्हें निद्रा सता रही हो तो तुम निश्चिन्त होकर सो जाओ। मैं भाग नहीं सकता। विश्वास रखो, मैं वर्तमान शासन को धोखा देने की सोच सकता हूँ, पर तुम्हारे जैसे उसके कर्मचारी को नहीं। (प्रहरी बैठे-बैठे सो जाता है)। प्रातः मुझे वक्तव्य देना है। तो अब मैं पुस्तकों का सिंहावलोकन करके स्थलों को चिन्हित करता चलूं। (खड़ा होकर दोनों हाथ पीठ पर रखकर घूम-घूम कर चिन्तन मुद्रा में) प्रथम पुस्तक खोल कर पेंसल से चिन्ह कर कागज का टुकड़ा उठा उसमें लगाते और मेज पर रखते हैं। पुनः चिन्तन करते हुए उसी प्रकार घुमते दूसरी पुस्तक में, पुनः तीसरी पुस्तक में, पुनः चौथी, पाँचवीं, छठी, सातवीं, आठवीं

पुस्तक देखते चिन्हित करते रखते जाते हैं। पाँच का घंटा बजते ही (चौंक कर) पाँच बज गए। अब थोड़ा विश्राम भी करलूं। (प्रहरी से) देखो! मैं अब विश्राम कर रहा हूँ। तुम अब जग जाओ। (लोकमान्य तख्ते पर सो जाते हैं)। घड़ी में ६ बजना देखकर प्रहरी ६ का घंटा बजाता है।

लोकमान्य—(जागकर) ६ बज गये! प्रातः कृत्य का भी समय बीत गया (मन में) फिर यह तो कारागृह है। इसमें धर्म कृत्य को कहाँ स्थान?

कारानिरीक्षक अँग्रेज—देखो अब तैयार हो जाओ। अभी आधे घंटे में न्यायाधीश वकीलों के साथ आवेंगे और तुम्हारा वक्तव्य लेंगे।

लोकमान्य—मैं तैयार हूँ। मैं वक्तव्य भी दूँगा, तर्क सहित दूँगा। पर, वे तो मुझे कारागृह ही देंगे। यह मुझे ज्ञात है।

निरीक्षक—कैसे?

लोकमान्य—अँग्रेज जाति के स्वभाव विचार नीति रीति से पूर्ण परिचित मैं ही नहीं, अनुभव शील मेरा हृदय भी कह रहा है। (न्यायाधीश, शासन वकीलों के साथ राजकीय वेश में एवं खपर्डे, करंदीकर वाष्टिस्टा वकील वेश में), वहाँ लोकमान्य धोती उत्तरीय मात्र धारण किये सामने प्रवेश करते हैं)।

न्यायाधीश—(वकीलों से) कार्य प्रारम्भ किया जाय।

वकील—अवश्य।

न्यायाधीश—(केसरी की प्रति लोकमान्य को देकर) यह अग्रलेख आपका लिखा है?

लोकमान्य—मेरा ही लिखा है।

न्यायाधीश—वरीसाल (बंगाल) ढाका, कलकत्ता में दिये हुए आपके भाषण की यह शब्दावली है न?

लोकमान्य—शब्दावली यह न भी हो तो भी भाव तो यही है।

न्यायाधीश—'मद्यनिषेध' पर रत्नागिरि में भाषण देते हुए क्या आपने शासन के विरुद्ध जनता को नहीं उत्तेजित किया था ? (लोकमान्य को मौन देखकर) कहिये ?

लोकमान्य—कहूँ क्या ? लिख कर दूँगा । (लोकमान्य हाथ से एक-एक पुस्तक न्यायाधीश को देकर) प्रथम आरोप इस दण्ड संहिता के अनुसार असङ्गत है, देखिये पृ० २०१ का ५ अनुच्छेद । (दूसरी पुस्तक देकर इसके पृ० ५६ का सङ्केत कर) यह प्रयाग न्यायालय का भी निर्णय है । द्वितीय आरोप (पुस्तक देकर) इस दण्ड संहिता के पृ० ७१, ८०, ६२, के अनुसार नितान्त असङ्गत है । इन दण्ड संहिताओं के रेखांकित धाराओं के अनुसार मुझ पर कोई भी आरोप सिद्ध नहीं होता । ये सभी आरोप असङ्गत एवं अन्यथा सिद्ध हैं ।

न्यायाधीश—(चकित हो) आरोप लगता ही नहीं ?

लोकमान्य—और क्या ? कोई भी आरोप नहीं लगता ।

न्यायाधीश—किन्तु, शासन के विरुद्ध विद्रोहात्मक भाषण देने के कारण आपको ६ वर्ष का कारादण्ड । न्यायाधीश का भीतर प्रवेश और लोकमान्य पुलिस द्वारा अधिकृत, वकीलों का बाहर निकलना 'करन्दीकर वाप्टिष्टा प्रभृति वकीलों से बाहर सप्रे डावरे प्रभृति का वार्त्तालाप) ।

सप्रे—कहिये क्या हुआ ?

करन्दीकर—हुआ क्या ? वही जो पहिले सन्देह था । (कुछ खिन्न हो) ६ वर्ष का कारागृह दण्ड ।

डावरे—६ वर्ष का दण्ड ?

करन्दीकर—इसी दुर्नीति के कारण ब्रिटिश शासन से घृणा हो रही है । इसमें आश्चर्य क्या ?

सप्रे—भाई डावरे ! लोकमान्य का वास्तविक सम्मान एवं आदर है उनके निर्दिष्ट पथ पर हम लोगों को चलना और उनकी योजना को सफल बनाना । दिन बीतते देर नहीं लगेगी ।

डावरे—अवश्य ! आज से विद्यालय की सेवा एवं वृत्त पत्रों के प्रसार में विशेष रूप से जुट जाना है, जिससे शासन को ज्ञात हो कि लोकमान्य के कारागार जाने पर भी उनका कार्य अवरुद्ध नहीं हो सकता ।

सप्रे—अवश्य ! (सभी चलते हैं) ।

——

स्थान—केसरी कार्यालय ।

(आगरकर, बैठ कर लिख रहे हैं । सप्रे, डावरे का प्रवेश ।)

सप्रे—भाई आगरकर जी, लोकमान्य को ६ वर्ष के लिए कारा-दण्ड हो गया ।

आगरकर—हाँ, यह तो पहले से ही अनुमान था । इसकी विशेष चिन्ता करने से क्या होगा !

डावरे—भाई लोकमान्य की चिन्ता करके ही हम लोग क्या कर सकते हैं ? जब वह शरीर ही राष्ट्र के लिए अर्पित कर चुके हैं । तब उनके लिए कारागृह क्या है ? पर चिन्ता है अपने लिए !

आगरकर—अपने लिए भी क्या चिन्ता है ? हम लोग भी उन्हीं के अनुगत हैं । वह आज गये, हम लोग कल जा सकते हैं । हाँ, चिन्ता है और सबसे अधिक चिन्ता है लोकमान्य की योजना की सफलता के लिए !

सप्रे—बिलकुल सही ! हाँ, लोकमान्य के शिक्षामण्डल एवं स्वराज्य संघ के लिए हम लोग सारी शक्ति लगा देंगे ।

डावरे—और क्या ?

आगरकर—भाई सप्रे जी ! आप कल से प्रातः २ घंटे मुद्रणालय देखा कीजिए । तदनन्तर स्वराज्य संघ का कार्य । खापर्डे जी एक घंटा लोकमान्य का विद्यालय का कार्य करें । और डावरे जी मेरा सहयोग करेंगे ।

सप्रे—जैसी आज्ञा ! हम लोग इस समय आपका आदेश लोकमान्य का ही आदेश समझते हैं।

आगरकर—यह आप लोगों की उदारता एवं राष्ट्रियता की प्रबल भावना है। बस, अब आप लोग जावें। ईश्वर आवश्यक सफलता देगा। (सब चलते हैं)।

(८ जून सन् १९१४ को १२ बजे रात को 'मेयो' नामक फौजी जहाज द्वारा मद्रास और वहाँ से स्पेशल ट्रेन से पूना के समीप 'हड़पसर' स्टेशन पर उतार कर १४ जून को १ बजे रात को पुलिस अधिकारी गायडर द्वारा मोटर से गायकवाड़ा तिलक भवन के द्वार पर लोकमान्य उतारे गये। घर पहचानने में भ्रम ! सामने विशाल वटवृक्ष को न देखकर ! भवन का कुछ भाग गिर गया है)

लोकमान्य—(आकर फाटक पर) कोई है ? द्वारवान् ? कोई है ?

द्वारवान्—क्या है ?

लोकमान्य—फाटक खोलो।

द्वारवान्—इस समय नहीं, ५ बजे प्रातः।

लोकमान्य—क्यों ?

द्वारवान्—क्यों क्या ? स्वामी की आज्ञा है। (परिचित का शब्द समझ कर भीतर से)

केलकर—आप ? कहाँ से आना हुआ ?

लोकमान्य—जेल से !

केलकर—जेल से ? किस जेल से ?

लोकमान्य—माण्डले जेल से। (सुनते ही केलकर दौड़कर आते किवाड़ खोलते प्रतिवेशियों का ताँता, केलकर तुरत चरण स्पर्श कर लोकमान्य की स्त्री के देहावसान का स्मरण कर रो पड़ते हैं, और लोकमान्य उन्हें सान्त्वना देते हैं)

लोकमान्य—भाई रोते क्यों हो ? यही तो संसार है ! एक दिन तो सबको जाना ही है ।

एक प्रतिवेशी—यह तो है ही । किन्तु......

लोकमान्य—यही न ! कि मैं था नहीं । तो रहकर ही मैं क्या करता ? मेरे जीवन का यह एक अध्याय समाप्त हुआ, दूसरा अध्याय भी एक दिन समाप्त ही समझिये । उनके लिए आप लोगों ने जो किया होगा, उससे अधिक मैं रह कर ही क्या करता ?

दूसरा प्रतिवेशी—उन्होंने जो जो कहा, इन लोगों ने वह सब किया ।

लोकमान्य—उनके निधन से मेरी हानि हुई । चिन्ता तो उनके लिए है जिनके निधन से देश की अपार हानि हुई ।

हाँ, असह्य वेदना है मुझे अपने सहकर्मी मित्रों के लिए, जो मुझे ही नहीं, राष्ट्र को असमय में अपाङ्ग बनाकर चले गये । हा ! भारत के लोकोत्तर अर्थशास्त्री गोखले ! हा नीतिपारदृश्वा दादा भाई नौरोजी ! हा ! विलक्षण राष्ट्राभिमानी रानाडे ! एक के बाद एक चलते गये । आज राष्ट्र का हृदय बैठ गया । उसके नेत्र निकल गये । उसकी बाहें कट गयीं ।

(सभी विषण्ण हो यथास्थान बैठकर)

एक प्रतिवेशी—इतनी पुस्तकें ?

लोकमान्य—हाँ, यह सब पुस्तकें पूना से गयी थीं ।

दूसरा प्रतिवेशी—इतनी !

लोकमान्य—इतनी और पुस्तकें राजकीय पुस्तकालय से मँगायी गयी थीं ।

(इसपर प्रतिवेशी आश्चर्यचकित)

लोकमान्य—भाई, माण्डले के भीषण जेल में इन पुस्तकों ने ही मुझे जीवित रखा । अन्यथा......

(केलकर सब पुस्तकें उठाकर लिवा जाते हैं)

लोकमान्य—(केलकर से) हाँ, देखिये (एक बण्डल हस्तलिखित पाण्डुलिपियों का देखकर उसे हाथ में लेकर)

चौथा प्रतिवेशी—यह तो जैसे किसी पुस्तक की पाण्डुलिपि है।

लोकमान्य—हाँ, यह गीता रहस्य की पाण्डुलिपि है।

एक प्रतिवेशी—क्या यही गीताभाष्य जेल में लिख रहे थे? एक पत्र में आपने इसकी चर्चा की थी। (हाथ में लेकर और पत्रावली देखकर) बड़ी अपूर्व पुस्तक होगी। दूसरी?

लोकमान्य—(दूसरी की पाण्डु लिपि दिखाकर) यह 'ओरायन' नामक पुस्तक ज्योतिष पर लिखी गयी है।

(सभी चकित)

एक प्रतिवेशी—जेल में? अच्छा, नित्यकृत्य किया जाय। कई दिनों की समुद्री यात्रा करनी पड़ी है। विश्राम किया जाय।

लोकमान्य—(सप्रे, डावरे प्रभृति से) कार्य तो सब......

सप्रे—(हाथ जोड़े) सभी कार्य व्यवस्थित रूप से हो रहा है और होता रहेगा।

लोकमान्य—यह तो मुझे पूर्ण आशा ही है। अच्छा तो चलूँ।

(लोकमान्य उठकर भीतर जाते और नागरिकों की भीड़ लगती जाती है)

स्थान—दिल्ली राजभवन, वाइसराय की गुप्त परिषद के चार सदस्य

प्रथम सदस्य—पता नहीं, आज अकस्मात् परिषद् क्यों बुलायी गयी?

खां साहब—परिषद् क्यों बुलायी गयी? इसका भी कारण पूछना है रायसाहब?

रायसाहब—और क्या?

सर नामपालसिंह—तिलक ने ऐसी आग लगायी है कि उसकी लपट इंगलैण्ड तक पहुँच गयी है। उसी पर पानी डालने के लिए परिषद् का निमन्त्रण होगा। पूजा के लिए आप नहीं बुलाये गये हैं रायसाहब!

रायसाहब—पर, ऐसी तो कोई बात नहीं है।

खाँ साहब—क्या कहा! ऐसी तो कोई बात नहीं है? तब उस विकट स्थिति को आप लोग जानते ही नहीं, या जानबूझ कर अनजान बन रहे हैं। आज ब्रिटिश शासन को जितना तिलक से भय है, उतना भारत के किसी भी दूसरे नेता से नहीं।

रायसाहब—क्या कहते हैं खाँ साहब? अंग्रेजों को तिलक से भय है? अंग्रेज जिस दिन चाहें, जब चाहें तिलक को, तिलक की कांग्रेस-सत्ता को क्षण भर में समाप्त कर सकते हैं! किन्तु उनकी राजनीति. सहिष्णुता, गंभीरता उन्हें ऐस करने से रोकती है।

खाँ साहब—आप जो कहें। किन्तु, तिलक केसरी की गर्जना से आज ब्रिटिश शासन का सिंहासन हिल चुका है। आपको ज्ञात होना चाहिये कि 'लन्दन टाइम्स' का सञ्चालक सर शिरोल कह चुका है कि मुझे अपने २५ वर्ष की पत्रकारिता के जीवन में दो ही व्यक्ति ऐसे मिले जिन्होंने मुझे सदा के लिए पराजित किया! एक भारत का लोकमान्य तिलक!! दूसरा जर्मनी का सम्राट् कैसर?

सर सिंह—ऐसा?

खाँ साहब—और क्या?

रायसाहब—हाँ, खाँ साहब, यह बात समझ में नहीं आ रही है कि सरकार के लाख यत्न करने पर भी मुसलमान तिलक का विरोध क्यों नहीं कर रहे हैं?

सर सिंह—हाँ साहब, यह बात तो है।

खाँ साहब—मुसलमानों ने न तिलक का अब तक कभी विरोध किया है और न आगे कभी करेंगे ही।

रायसाहब—क्यों? (सभी चकित)

खाँ साहब—इसलिए कि तिलक सचमुच महात्मा है। वह मन में जो सोचता है, वही मुँह से बोलता और वही करता भी है। तिलक

द्वारा गणेश महोत्सव शिवामहोत्सव चलाने और हिन्दुत्वभावना से प्रभावित होने पर भी सरकार द्वारा प्रेरित होकर भी मुसलमान तिलक का विरोध नहीं करते। यही नहीं मि. जिन्ना जैसा राजनीतिज्ञ मुसलिम नेता तक तिलक के अभियोग की निःशुल्क वकालत करता है।

सर सिंह—सचमुच, यह आश्चर्य की बात है!

खां साहब—इससे अधिक आश्चर्य की बात तो तिलक की वह है जो एक कांग्रेस महाधिवेशन के अवसर पर कहा था कि मुसलमानों को कौंसिल की अधिक सदस्य संख्या देना क्या। यदि अकेले मुसलमानों को ही स्वराज्य दिया जाय तो मैं उसका समर्थन ही करूँगा। तब उस समय झगड़ा केवल मुसलमानों से ही तो रहेगा। इस समय की तरह त्रिकोण विरोध (हिन्दु मुस्लिम अँग्रेज विरोध) तो नहीं।

नामपाल सिंह—ऐसा यह सुनकर सभी दर्शक चकित! मुसलमान तो उछलने लगे।

खां साहब—तिलक के प्रति सरकार द्वारा आरोपित मुस्लिम विरोधी भावना मुसलमानों के हृदय से हट गयी है।

नामपाल सिंह—इसी से।

खां साहब—सदा के लिए हट गयी है। इससे मुसलमान आज सर्वथा तिलक के साथ हैं और इसीसे आज ब्रिटिश को जितना तिलक से भय है उतना अन्य किसी दूसरे नेता से नहीं।

सर सिंह भाई कोई कुछ कहे 'स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है। स्वदेशी प्रचार हमारा जन्म सिद्ध कर्त्तव्य है, लोकमान्य का यह राष्ट्रिय नारा आज भारत के कोने-कोने में व्याप्त एवं विख्यात हो गया है।

खां साहब—अवश्य! अब उनके और उनके गर्म दल के सामने गोखले, बनर्जी और उनका नर्म दल हतप्रभ हो चुका है।

सर सिंह—और क्या?

खां साहब—औपनिवेसिक स्वराज्य तो देना ही पड़ेगा और उसका एकमात्र श्रेय लोकमान्य को ही होगा। (गवर्नर का प्रवेश, सब लोग उठते हैं और गवर्नर के बैठने पर बैठते हैं।)

गवर्नर—यह बताने की आवश्यकता नहीं कि योरप महासमर आज भयङ्कर रूप धारण कर चुका है। उसमें कोई भी राष्ट्र अपने को असम्पृक्त नहीं रख सकता।

खां साहब—और क्या?

नामपाल—तब?

गवर्नर—तब क्या? भारत कोभी न्याय पक्ष लेना ही चाहिये।

नामपाल—हम लोग तो सर्वात्मना सन्नद्ध हैं।

खां साहब—केवल हम दो चार क्या कर सकते हैं। जब तक जनता तैयार न हो।

नामपाल—सही है।

खां साहब—और आज की जनता तो कांग्रेस के हाथ में है, जिसका एकमात्र सञ्चालन बालगङ्गाधार कर रहे हैं।

नामपाल—इसमें तो तनिक सन्देह नहीं।

गवर्नर—ऐसा?

नामपाल—और क्या?

गवर्नर—लोकमान्य को भी मैंने आमन्त्रित किया है। वह आते ही होंगे। (सभी चकित मुद्रा में, द्वारवान् प्रवेश कर)।

द्वारवान्—(गवर्नर से हाथ जौड़े) पूना से बालगङ्गाधर जी आये हैं।

गवर्नर—जाकर साथ लाओ। (द्वारवान् के साथ तिलक का प्रवेश)।

गवर्नर—आइए तिलक जी (आसन का सङ्केत कर) बैठिये।

तिलक—(बैठकर सबको सतर्क देखते हैं)।

गवर्नर—आज की परिषद् का उद्देश्य है वर्तमान महासमर में भारत का कर्त्तव्य निर्धारण करना। इसमें आपका क्या मत है?

तिलक—मेरा मत क्या? कांग्रेस के मत से भिन्न मेरा कोई मत नहीं कांग्रेस की महासमिति बुलाये बिना उसका मत कहा नहीं जा सकता।

गवर्नर—थोड़ी देर के लिए मान लें कि महासमिति आप के ही मत में अपना मत समझी है। तब?

तिलक—तब? शासन यदि भारत को स्वराज्य देने का आश्वासन देवे तो मेरे मत से भारत भी उसे पूर्ण सहायता देने का आश्वासन देगा। (सभी भयभीत होकर देखते हैं)।

गवर्नर—यह तो कठिन होगा।

तिलक—तो सरल क्या होगा?

गवर्नर—मैं सोच कर बताऊँगा।

तिलक—बहुत अच्छा। तब मैं चलूं।

गवर्नर—अवश्य!

(तिलक चलते हैं)

सभी सदस्य—हम लोग प्रयत्न करेंगे। सोलह आने न सही तो आठ आने सही।

गवर्नर—हम आप लोग अवश्य प्रयत्न करें। (सभी चलते हैं)।

नागपुर—उद्यान में सभा मञ्च पर नेताओं का जमघट।

सप्रे—(डावरे से) भाई डावरे! १ हजार मील तो ट्रेन से और प्रायः उतना ही मोटर से ३ सप्ताह की यात्रा करके आज हम लोग लौटे हैं। जिसमें १०० भाषण भिन्न-भिन्न स्थानों में लोकमान्य के हुए हैं। जन-समूह श्रद्धा और भक्ति से उमड़ पड़ता था। दिल खोल कर स्वराज्य कोष के लिए लोगों ने २ लाख की थैलियाँ दी हैं।

डावरे—२ लाख का दान?

सप्रे— और क्या ? सतारा में एक विचित्र घटना से लोग चकित हो गये, जब एक निर्धन चर्मकार ने विह्वल हो २) थैली में डाल दिया, जो बाजार से सामान लाने के लिए पास में रखा था। एक शैव ने तो अपने देवता का लिङ्गायतन ही सहर्ष दे दिया। और सबसे अधिक आश्चर्य तो उस समय हुआ, जब सभी दर्शक सीनेमा भवन से निकल कर लोकमान्य के मोटर के सामने आकर खड़े हो गये! घंटे भर तक खड़े रहे।

डावरे—ऐसा ?

सप्रे—और क्या ? वस्तुतः लोकमान्य आज जनता के मनोमन्दिर में प्रतिष्ठित हो चुके हैं।

डावरे—दर्शन के लिए उत्कण्ठा बढ़ती ही जाती है।

सप्रे—(घड़ी देखकर) अब आते ही होंगे। बड़ी भीड़ है। इसीसे देर हो रही है। ('स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है' 'स्वदेशी प्रचार हमारा जन्मसिद्ध कर्त्तव्य है' 'भारत माता की जय! शिवा प्रताप की जय! लोकमान्य की जय! बोलता जनसमूह और उसके आगे-आगे लोकमान्य, गांधी जी, अरविन्दघोष, विपिन चन्द्रपाल, लाला लाजपतराय आते हैं। दर्शक लोग स्वागत में खड़े हैं। मञ्च पर बीच में लोकमान्य अगल बगल में नेता लोग बैठते हैं)।

लोकमान्य—(हाथ जोड़े) भाइयो, मेरे आने में आधे घंटे का विलम्ब हुआ है, तदर्थ आप लोगों से मेरी क्षमा याचना है।

गांधी जी—भाइयो, शिष्टाचार के विचार से लोकमान्य ने विलम्ब से आने की क्षमा याचना की है, किन्तु स्वराज्य प्राप्ति की साधना में आधे घंटे का विलम्ब कोई विलम्ब नहीं। इससे कोई हानि नहीं। लोकमान्य वस्तुतः हमारे लोकमान्य एवं भारतमाता के तिलक हैं। हाँ, अब अपने ओजस्वी भाषण से हम लोगों का मार्ग प्रदर्शन करें, ऐसी हमारी लोकमान्य से प्रार्थना है।

लोकमान्य—स्वतन्त्रता के पुजारियो—अब भाषण का समय निकल गया। यह कर्त्तव्य कर्म का कारण है।

इंगलैण्ड प्रचुर व्यय करके भी जैसे जिब्राल्टर, माल्टा, स्वेजकी रक्षा करता है, उसी प्रकार भारत की रक्षा के लिए अधिक से अधिक हानि सह कर भी प्रान्तों में एकता एवं अखण्डता बनाये रखना परमावश्यक है। अपनी रक्षा के लिए हमें अपने दूसरे प्रान्तों की रक्षा करनी है। तभी हम भारत को स्वतन्त्र, सफल एवं सबल बना सकते हैं। (जनता द्वारा तालियों की गड़गड़ाहट) हम शौकत अली एवं मुहम्मदअली जिन्ना के हाथ में भारत का शासन सूत्र देख सकते और प्रसन्न हो सकते हैं, पर भारत की पावन भूमि पर गोरा शासन नहीं देख सकते। हमारे लिए अब गोरा शासन असह्य है। सभी (एक स्वर से) अवश्य! अवश्य!! अब गोरा शासन हमारे लिए असह्य है! भारत-माता की जय लोकमान्य की जय। (सभी खड़े होकर 'वन्देमातरम्' राष्ट्रगीत गाते हैं और गाने के बाद सभा विसर्जित हो जाती है।

वन्दे मातरम् !

सुजलां सुफलां मलयजशीतलां
शस्यश्यामलां मातरम !"

"शुभ्र-जोत्स्ना-पुलकित यामिनीम्
फूल्लकुसुमित-द्रुम दल शोभिनीम्

सुहासिनीम् सुमधुर भाषिणीम्
सुखदाम् वरदां मातरम् ॥"१

त्रिंशत्कोटिकण्ठ कल-कल निनाद कराले,
षष्ठि कोटि भुजैधृत खरकरवाले,

अवला केन मा एन वले।
वहु वल धारिणीम् नमामि तारिणीम्

रिपुदल वारणीम् मातरम् ॥
तुमि विद्या, तुमि धर्म्म,

तुमि हृदयं, तुमि मर्म्म
त्वं हि प्राणाः शरीरे।

बाहुते तुमि या शक्ति
हृदये तुमि मा भक्ति

तोमादई प्रतिमा गड़ि मीन्दरे मन्दिरे ।
त्वं हि दुर्गा दश प्रहरण धारिणी
कमला कमल दल विहारिणी
वाणी विद्या दायिनी नमामि त्वां
नमामि कमलाम् अमलाम् अतुलाम्
सुजलां

समाप्त